श्रीः

पद्मश्रीविरचित

नागरसर्वस्व

(कामशास्त्रका अपूर्वग्रन्थ)



आयुर्वेद महामहोपाध्याय—

पं० भगीरथस्वामी द्वारा
परिशोधित संस्करण

प्रकाशक—

श्रीवेंकटेश्वर पुस्तक एजेन्सी,

१६५।२, हरिसनरोड, कलकत्ता।

Private circulation.

(नितान्त गोपनीय)

कविशेखर पद्मश्री विरचित

नागरसर्वस्व



अर्थात्

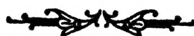
सांसारिक सुखका साधन ।

संस्कृत मूल और सरल भाषाटीका सहित ।



अनुवादक

पण्डित श्रीराजधर झा काव्यतीर्थ



प्रकाशक

श्रीनिवास गिरधारीलाल लोहिया,

मालिक—श्रीवेंङ्कटेश्वर पुस्तक एजेन्सी ;

नं० १५।२ हरिसन रोड, कलकत्ता ।

प्रथम संस्करण] [मूल्य २॥)

प्रकाशक
श्रीनिवास गिरिधारीलाल लोहिया,
मालिक
वेंकटेश्वर-पुस्तक-एजेन्सी,
नं० ६५।२ हरिसन रोड,
कलकत्ता ।

जनवरी १९२९

मुद्रक—
पण्डित नरोत्तम व्यास,
मालिक
श्रीनारायण-प्रिण्टिङ्ग-वर्क्स,
८ चित्पुर स्पर, (मछुआबाजार)

भूमिका



इस संसारमें कोई भी प्राणी रति आदि नवों भावों वा रसोंमेंसे एक न एकका सहारा लिये बिना क्षण भर भी चैन नहीं पा सकता। विशेष कर उनमें रति अर्थात् प्रीत्यात्मक भाव ही प्रायः प्रधान है। यद्यपि अन्यान्य भावोदयके समय उक्त भाव कुछ क्षणके लिये अन्तर्लीन हो जाता है, किन्तु उस भावकी प्रबलता या बलवती वासना बनी ही रहती है। अतएव सब रसोंमें श्रृंगाररस प्रधान अथवा आदि रस कहानेका श्रेय उसे ही प्राप्त है।

रति वस्तु क्या है? उसका लक्षण संस्कृत साहित्यके सुप्रसिद्ध आलङ्कारिक विद्वान् कविराज विश्वनाथ महापात्र ने अपने साहित्यदर्पणमें यों किया है। "रतिर्मनोऽनुकूले मनसः प्रवणायितम्" अर्थात् मनके अनुकूल पदार्थमें अच्छी तरह मनका आसक्त होना ही रति है अथवा यों भी कह सकते हैं कि प्रेमार्द्र चित्त ही रति है। वही रति देवता, गुरु, माता, पिता, तथा महात्माओंके प्रति भक्ति नामसे कही जाती है। समान वयस्कोंके प्रति मित्रता नामसे व्यवहृत होती है और धर्मपत्नीके प्रति श्रृंगार रसका स्थायी भाव रति कहाता है।

इस संसारका गृहस्थाश्रम या "घर-गिरस्ती" का सारा दार-मदार या उत्तर-दायित्व स्त्री-पुरुषके सच्चे प्रेम-बन्धनके ऊपर ही निर्भर है। यह सभी जानते हैं कि जिस:]

घरमें स्त्री-पुरुष परस्पर शुद्ध प्रेमके उपासक नहीं होते उस, घरमें निर्जन वनके समान उदासीनता छायी रहती है। महाकवि भवभूतिने कहा है कि 'अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणं सर्वास्ववस्थासु यद्विश्रामो हृदयस्य यत्र, जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः। कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेह सारे स्थितं। भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ॥' अर्थात् जो प्रेम, सुख और दुःखमें एक समान रहता है सब अवस्थाओंमें अनुकूल गुणवाला होता है, जिसके सहारे हृदयको विश्राम मिलता है, बुढ़ापेमें भी जो अनिवार्य होता है एवं परिणाममें लज्जा आदिका आवरण हट जानेपर जो स्नेहके साररूपमें परिणत होता अर्थात् प्रेममय हो जाता है, ऐसा प्रेम किसी किसी सौभाग्यशाली सज्जनके भाग्य में सम्प्राप्त होता है।

जिस प्रकार रतिके उत्पादक और संवर्धक सौन्दर्य, वीर्यशालित्व, कलानैपुण्य तथा सुशीलत्व आदि गुण हैं उसी प्रकार उनका सर्वथा अभाव रतिका विघातक भी है। इसी लिए उन गुणों द्वारा प्रीति बढ़ानेके अनेक उपाय तथा स्वदाररक्षण एवं पुत्रप्राप्तिके उपायोंका भली भांति ज्ञान तथा गृहस्थाश्रमको स्वर्ग बनाने और दाम्पत्यधर्मके तत्वों द्वारा जनताको लाभ होनेके उद्देश्यसे सकल विद्याओं के आदि उपदेशक भगवान् महेश्वरने 'कामतन्त्रको भी रचा। कामका लक्षण है कि "स्त्रीषु जातो मनुष्याणां

स्त्रीणाञ्च पुरुषेषु वा। परस्पर कृतः स्नेहः काम इत्यभिधीयते।" अर्थात् स्त्रियोंमें मनुष्योंके और मनुष्य अथवा पुरुषोंमें स्त्रियोंके उत्पन्न परस्पर प्रेमको काम कहते हैं। अतएव काम विषयक तन्त्र कामतन्त्र हुआ। वह बहुत विस्तृत रूपमें है, जो आजकलके अल्पायु तथा आलसी मनुष्योंके लिये अधिक उपकारी नहीं हो सकता। इसलिए वात्स्यायन मुनिने सब विषयोंको संक्षेप रूपमें एकत्र कर कामसूत्रको बनाया। तदनन्तर उसी कामसूत्रके आधार पर लोकोपकारार्थ अपने-अपने नवीन अनुभवोंका भी समावेश करके कल्याण मल्ल, कोक्कोक आदि कवियोंने अनङ्ग-रङ्ग तथा रति-रहस्य आदि ग्रन्थोंको बनाया। उसी प्रकार बौद्धभिक्षु विद्वान् पद्मश्रीने इस 'नागर-सर्वस्व' को भी रचा। बौद्धभिक्षु अर्थात् परिव्राजक होकर रचा इससे आश्चर्य्यमें न आना चाहिये, क्योंकि पूर्व कालमें संसार-विरक्त साधु केवल अपनी एक आत्माके लिये ही विरक्त होते थे, किन्तु जनताके उपकारमें सदैव अनुरक्त रहते थे। गुरु महाशय गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके समय अपने भक्त शिष्यको काम-शास्त्रका भी उपदेश देते थे, इसलिए इस पुस्तकको भी लोकोपकारार्थ ही संस्कृतसे हिन्दीमें अनुवादित किया गया है। इसका उद्देश्य यह नहीं कि जनताका अकल्याण हो, प्रत्युत् काम-कल्याण-कामनाके लिये ही भाषान्तर हुआ है। संस्कृतमें होनेके कारण अब तक ऐसी

पुस्तकोंसे निर्व्याज प्रेमका पुजारी सज्जन-युवक-जगत् वञ्चित था, इसलिए अब संस्कृतके न जाननेवाले भी इससे उचित लाभ उठायेंगे तो मेरा परिश्रम सफल होगा। यदि वास्तवमें काम भी एक प्रकारका कटार ही है। इसकी भी धार तलवारकी सी है। यदि युवकवृन्द इसका सच्चा उपयोग करेंगे तो संसारका सच्चा सुख पायेंगे अन्यथा इसके विपरीत—इसका दुरुपयोग करेंगे तो तलवार का सच्चा उपयोग जैसे आत्मरक्षा है, वैसे ही उसका दुरुपयोग अर्थात् निर्दोष व्यक्तिके ऊपर प्रहारकी भाँति परिणाम स्वरूप आत्म-विनाश है। ठीक इसी तरह त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम है। इसका सदुपयोग अपनी धर्म-पत्नीके विषयमें है, किन्तु इसका दुरुपयोग परस्त्री विषयक दुर्वासना है। इस दुरुपयोगका कुफल भी प्रायः प्रति दिन देखनेमें आता है, फिर विशेष लिखना व्यर्थ है। अतएव यह पुस्तक उपयोगिताकी दृष्टिसे देखनेपर सज्जनों तथा सहृदयों को उपयागी ही जँचेगी। इसलिए यह पुस्तक गृहस्थाश्रम में प्रवेश करनेवाल युवकोंको सच्ची सलाह देगी।

प्रस्तुत पुस्तकमें अन्यान्य कामशास्त्र विषयक ग्रन्थोंकी अपेक्षा विशेषता यही है कि इसका नाम ही पहले नागर-सर्वस्व अर्थात् नगर-निवासियों (शहरके रहनेवालों) का रति विषयक सर्वस्व है। ग्रामवासियोंकी अपेक्षा नगर-निवासी सदासे सब व्यवहारोंमें चतुर होते आये

है। इसका प्रमाण यही है कि (आजकल सभी) नागरिक ग्रामीणोंको "देहाती" कहके कोसते हैं।

इतना ही नहीं जो ग्रामवासी कुछ दिनके लिए भी नगर-निवासका सौभाग्य प्राप्त कर लेते हैं, वे भी अपने गांवके लोगोंको गंवार या देहाती कहनेसे नहीं चूकते। अतएव यह सिद्ध है कि अनेक पीढ़ियोंसे बसे हुए व्यापारी तथा नगर-निवासी ग्रामवासियोंसे कहीं व्यवहार-चतुर होते हैं। अतएव कामकलाओंमें भी उनका कुशल होना जन्मसिद्ध अधिकार है। सुतरां उनके रति विषयक व्यवहार विशेषोंका वर्णन होनेसे यह पुस्तक सोनेमें सुगन्धिका काम करती है। इसमें स्त्रियोंका संकेत अर्थात् ताम्बूल, पुष्पमाला आदि देनेका संकेत, नाड़ी संक्षोभण, सशब्द चुम्बन, जिह्वा प्रवेश, चूषण, मर्दन, ग्रहण तथा अगुलि प्रवेश आदि विशेष देखनेमें आते हैं। रत्नोंकी परीक्षा तथा उनके धारणका विषय भी और पुस्तकोंमें नहीं हैं। रमणियोंकी विविध शृङ्गार चेष्टाएं हाव भाव आदि परम प्रीतिवर्धक लक्षण भी इसमें विशेष रूपसे वर्णित हैं। मन्त्र विशेषसे कामकला क्षोभण भी अन्यत्र नहीं पाए जाते। सुतोदय अर्थात् पुत्र-लाभके भी उपाय इसमें बताए गये हैं। स्त्री-पुरुषका जाति निर्णय भी वर्णित है। इस प्रकार कामशास्त्र विषयक अनेक गुण-सम्पन्न होनेसे यह पुस्तक सर्वथा उपादेय है।

अन्तमें हम अपने प्रिय पाठकोंसे नम्रनिवेदन करते हैं कि इसके प्रकाशनका उद्देश्य नव-युवक संसारमें इस विषयका ज्ञान-वर्धन तथा उसका सदुपयोग ही है, दुरुपयोग कदापि नहीं। हाँ तब यह भी पहले मैंने कहा है कि एक ही वस्तुमें अनेककी पृथक् पृथक् अनेक भावनाएं होती हैं। उस दृष्टिसे किसी सज्जनको यह प्रतिकूल भी जच सकती है किन्तु फिर इसका उपाय ही क्या है। अन्तमें उन से भी मेरी विनीत प्रार्थना और आशा यही है कि वैसी धारणाको वे अवश्य चित्तसे दूर करेंगे और इसके गुणपर विचार करेंगे ; क्योंकि संसारमें सर्व गुण-सम्पन्न विषय वस्तु अथवा व्यक्ति प्रायः विरलेही हैं।

"सन्तः परीक्षान्यतरद्भजन्ते मूढ़ः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः।"

॥ इति शुभम् ॥

कलकत्ता,
भाद्रशुक्ला पञ्चमी
सं० १९८१

आप लोगोंका अनुग्रहाग्रही

प्रकाशक।

॥ श्रीः ॥

सटीकम्

नागरसर्वस्व

प्रथम परिच्छेद

मङ्गलाचरण ।

मुहूर्तमपि यं स्मरन्नभिमतां मनोहारिणीं
लभेत मदविह्वलां झटिति कामिनीं कामुकः ।
तमुल्लसितडम्बरं सुरुचिराङ्गरागारुणं
नमामि सुमनःशरं सततमार्यमञ्जुश्रियम्

कामशास्त्रके इष्टदेव कामदेवजी हैं, इसलिये ग्रन्थकर्त्ता का कामदेवको प्रणाम करनेके लिये मंगलकी बृद्धिके लिये यह पहला पद्य है। तात्पर्य्य कि कामदेवजीका ऐसा तीक्ष्ण प्रभाव है कि क्षणमात्रके स्मरणसे कामीजन कामपीड़िता एवं मन हरनेवाली अपने अभिमत कामिनीको

पा लेते हैं । इसलिये ऐसे सदर्प, तथा सुन्दर कन्दर्पको मेरा बारम्बार * नमस्कार हैं ।

केचिद्भाषान्तरकृततया कामशास्त्रप्रबन्धा
दुर्विज्ञेया गुरुतरतया केचिदल्पार्थकाश्च
तत्पद्मश्रीविरचितमिदं सर्वसारं सुबोधं
शास्त्रं शीघ्रं शृणुत सुधियोऽभीष्ठ धर्मार्थकामाः

कितने ही कामशास्त्र विषयक ग्रन्थ तो अनेक भाषाओं में हैं (भाषान्तरमें हैं) इसलिये वे दुरूह हैं अतएव उनका प्राप्त होना कठिन है अर्थात् सरल नहीं है। कितने बहुत संक्षेपमें हैं, इसलिये भी दुर्बोध हैं। अतएव विद्वान् जनोंके स्पष्टतया समझने लायक कामशास्त्रका सारभाग, जिसे पद्मश्रीने बनाया है, उसको अभीष्ट सिद्धिके लिये यह नागरसर्वस्व शीघ्र देखना चाहिये ।

नाना विचित्रैः सुरतोपचारैः
क्रीडासुखं जन्मफलं नराणाम् ।

---

* टिप्पनी ग्रन्थकार पद्मश्री बौद्धमती थे ; क्योंकि आर्यमञ्जुश्री बुद्धदेवका भी नाम है, इसलिये ग्रन्थके आरम्भमें उनका स्मरण करना ग्रन्थकारका कर्त्तव्य है ।

किं सौरभेयीशतमध्यवर्ती
वृषोऽपि संभोग सुखं न भुंक्ते ॥३॥

गृहस्थ मनुष्योंका जन्म अनेक प्रकारके शास्त्रीय सुन्दर रमणके प्रबन्धोंसे सुरत सम्बन्धी क्रीड़ाओंसे ही सफल है अन्यथा ऐसा न होता तो गौके झुण्डोंमें दिन-रात रहनेवाला वृष (सांड) भी क्या संभोगका सच्चा सुख नहीं पाता ? *

हित्वात्म कामं शमयेद्वशी यो
नितम्बिनीनां मदनज्वरार्तिम्।
कृपान्वितो मन्मथशास्त्रवेदी
समाप्नुयात् स्वर्गसुखं स धीरः ॥४॥

जो मनुष्य अपना स्वार्थ त्याग कर कारणवश स्वयं प्राप्त परस्त्रीका कामज्वर अर्थात् मदनके वाण प्रहारसे व्याकुल स्त्रीकी पीड़ा शान्त करता है, वह स्वर्गीय सुख

* टि० तात्पर्य यह कि केवल संभोग सुख बैलको भी होता है, परंतु रसों तथा भावोंका ज्ञान और विकास केवल सहृदय मनुष्योंको ही होता है। इसीलिये कहा है, कि "आहार निद्रा भय मैथुनंचेत्यादि" अर्थात् खाना, पीना, भय, मैथुन, ये सब मनुष्य और पशुओंमें समान ही होता है, किन्तु मनुष्यमें ज्ञान विशेष है अन्यथा मनुष्य भी पशु तुल्य है।

पाता है। तात्पर्य यह कि वह पुरुष वशी याने जितेन्द्रिय कृपायुक, कामशास्त्रका मर्मज्ञ एवं धैर्यशाली हो। * जैसा महेश्वर कहते हैं—

"कामं त्यक्त्वात्मनः कामी
कामव्याधि निपीड़िताम्।
चिकित्सयति यो नित्यं
पदं प्राप्नोति कामिकम्" ॥ ५ ॥

जो अपने कामदेवको परित्याग कर, कामज्वरसे दुःख-को प्राप्त अपनी स्त्रीकी नित्यप्रति (ऋतुकालमें) चिकित्सा करता है वह कामिकपदको प्रा प्त होता है।

ज्ञानेऽस्य शास्त्रस्य धनाशयानां
तिष्ठन्तु तावद्धनधान्यलाभाः।

* टि० महाभारतका प्रमाण—"कामार्ता स्वयमायाता यो न भुंक्ते नितम्बिनीम्। सोऽवश्य नरकं याति तन्निश्वास हतो नरः।" अर्थात्—परस्त्री-गमनमें तभी दोष नहीं है जब कि स्त्री स्वयं कामार्त होकर पास आ जाय। ऐसी अवस्थामें संभोग न करनेसे ही महा-पाप है, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि तबसे उसके पीछे पड़ जायं, इसीलिए ऊक्त श्लोकमें वशी और धीर तथा कामशास्त्रज्ञ कहा है।

सुतार्थिनां नापि सुता दुरापाः
श्रद्धावतां साधयतां प्रयत्नात् ॥ ६ ॥

कामशास्त्रके ज्ञानसे धन चाहनेवालोंको धन मिलना तो अवश्यम्भावी है, किन्तु इतना ही नहीं पुत्र चाहनेवालों को पुत्र भी असम्भव नहीं—यदि श्रद्धावान् व्यक्ति हों और प्रयत्नशील हों।

यथोपदेशेन वराङ्गदेशे
बीजस्य विन्यास वशेन नारी।
सङ्कल्पजव्याधिनिपीड़िताङ्गी
समर्पयेत्सद्रविणां शरीरम् ॥ ७ ॥

संकल्पसे उत्पन्न हुए कामसे अति पीड़ित जो स्त्री वराङ्ग अर्थात् गुप्त स्थानमें बीज स्थापन कराकर विन्यास पूर्वक बीज स्थापन करावे तात्पर्य यह कि जिससे पुत्र हो फिर उसके बाद पुत्र और धनके साथ अपने शरीरको अपने स्वामीको अर्पण कर दे। *

* टि० पूर्व श्लोकमें कहा गया है कि जो स्त्री कामार्त होकर अन्य पुरुषके पास जाय तो पुरुषको पापके स्थानमें धर्म ही होता है इसीलिये उक्त दोषका परिहार करते हैं कि यदि उक्त कार्यसे स्त्रीको पुत्र हो तो—वह क्या करे, अर्थात् सीधे हृदयसे स्वामीको सब अर्पण कर दे।

जगत्त्रिवर्गप्रभवं यदेतत्
कृतं ततः सत्वहितैर्महद्भिः।
बुधैर्विधेया न कुदृष्टिरस्मिन्
गुणांशहृद्या वचनेन सन्तः ॥ ८ ॥

प्राणी मात्रके शुभचिन्तक महान् विधाताने इस संसारको त्रिवर्ग धर्म, अर्थ और काम इनसे उत्पन्न किया अर्थात् जगत्का कारणीभूत त्रिवर्ग ही है, अतएव किसी भी विचारवान् व्यक्तिको इस शास्त्रकी उपेक्षा न करनी चाहिये ; क्योंकि गुण-ग्रहण करनेमें ही चतुरता है।

तथा च महेश्वरः—

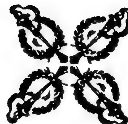
सत्वोपकार परमा हि त्रिवगसाराः
सत्वोपकाररचिता विदुषां विभूतिः।
सत्वोत्थमेव विदधीत यदाश्रयीत
वैशेषिकं यदिह तेन कृतं स शास्त्रम् ॥९॥

त्रिवर्गका सार भूत धर्म, अर्थ तथा काम ये तीनों प्राणीमात्रके उपकार करनेवाले हैं और इन्हींके आधारपर सज्जनोंकी सम्पदा है। इसलिये सत्व प्रधान कार्यका ही आश्रय लेना चाहिये जो ऐसा करता है, वह वैशेषिक अर्थात् दर्शन शास्त्रोक्त मोक्ष फलका अधिकारी होता है।

सत्वोपकारपरमा हि ममाग्रपूजा
सत्वापकारपरमश्च पराभवः स्यात् ।
दुःखं सुखं च मम सत्वसमानमिष्टं
सत्वेषुः यः प्रहरते स कथं मदीयः॥१०॥

प्राणियोंका उपकार ही मेरा परम धर्म है और सत्व अर्थात् प्राणियोंके अपकारमें ही मेरा पराभव है अर्थात् सभी प्राणियोंके सुख-दुःखोंमें मेरा समान इष्ट है अतएव प्राणियोंपर जो प्रहार करता है वह मेरा नहीं है। अर्थात् जीवहिंसा करना घोर अन्याय है। ग्रन्थकार बौद्धमतावलम्बी है। इसलिये उसका जीवहिंसाका घोर विरोध करना उचित है। सुतरां जीवहिंसक बौद्धधर्ममें नहीं रह सकता।

प्रथमः परिच्छेदः ।



द्वितीय परिच्छेद



प्रज्ञाकलायौवनजातिसम्पत्
सौन्दर्यविद्यामदगर्विताभिः ।
सुदुर्लभाभिर्वरसुन्दरीभिः
संभोग संजात सुखं यदीच्छेत् ॥ १ ॥
कालोचितैर्धूपित धौतवस्त्रै
रत्नोज्ज्वलैराभरणैरनेकैः ।
कण्ठोपकण्ठोल्लसिताग्रपुष्प
स्रग्भिश्च मत्तालिकुलाकुलाभिः ॥२॥
नानाविधामोदविदग्धवासैः
श्रीखण्डताम्बूलशुभाङ्गरागैः ।
नरोत्तमो मन्मथशास्त्रवेदी
प्रसाधयेत् साधु निजं शरीरम् ॥ ३ ॥

(श्लोकत्रयेणान्त्य कुलकम्)

कामशास्त्रका ज्ञाता सुन्दर नायक यदि सर्वाङ्ग सुन्दरी रमणीसे सम्भोग करना चाहे तो उसे भी पहले अपने शरीरको सर्वथा सुसज्जित कर लेना ठीक है। सुन्दरी भी जैसी तैसी नहीं, जिसमें बुद्धि, कामसूत्रोक्त चौंसठ कलाओंका, यौवनका, उत्तम जाति अर्थात् पद्मिनी या चित्रिणीका, सम्पत्तिका, सौन्दर्य और विद्याका अभिमान हो अतएव इन कारणोंसे जो अलभ्य हो, जो समयोचित शृंगारों तथा रत्न जटित आभूषणों तथा पुष्पमालाओं से अपने शरीरको सुभूषित किये हो, जिसके मुखमें पानकी लाली हो और अंगरागसे हथेली और चरण जिसके रंगे हुए हों ऐसी सुन्दरीके लिए अपनेको पूर्णतः उसके योग्य बनाना चाहिये।

अनेक वाद्यं विविधास्त्र पंक्तिकं
सुपुष्पधूपोज्ज्वलराशिवासितम्।
विचित्रसत्पट्टवितानशोभितं
प्रकल्पितात्यन्त मनोरमासनम्॥ ४॥
प्रकम्पिपर्यङ्कसुघर्घरीरव-
प्रबुद्धपारावतकण्ठकूजितम्।
रथाङ्गहंसस्वन रम्यदीर्घिका
जलोर्मिसंलासकवातबीजितम्॥५॥

विशुद्धभावोचितचित्रभूषितं
सुरागसिन्दूरविराजिकुट्टिमम्।
प्रहृष्टचेतः शुकसारिकारवं
विनिर्मयेद्वासगृहंमनोरमम् ॥६॥ *

केलिभवन कैसा होना चाहिये, यह कहते हैं। उसकी सजावटके लिये सभी वाद्य हों, सब अस्त्र भी एक स्थान में रक्खे हों, सुगन्धिमय धूप या धूमसे सुवासित हो, फूलोंके विन्यास हों, सफेद चँदवे टंगे हों, नीचे भी सफेद चादर बिछी हुई हों, सुन्दर २ पलंग हों, कहीं कबूतर बोल रहे हों, मकानके पास छोटा तालाब हो, जिसमें चकवे चकवियोंके मधुर कलरव हो रहे हों। शीतल और सुगन्धित हवा चल रही हो, घरमें दीवारमें सुन्दर २ चित्र लगे हुए हों, दीवार भी रंगीन हों तथा युवक युवती पति-पत्नी शरीरसे अत्यन्त पुष्ट और मनसे अत्यन्त हृष्ट हों तात्पर्य यह कि घरकी सभी चीजें परम मनोरञ्जक और आनन्द-वर्धक हों।

इति द्वितीयः परिच्छेदः।

* टि० छंदशास्त्रके नियमानुसार तीन श्लोकोंका एक साथ अन्वय और अर्थ सम्मिलित रहनेसे कुलक होता है इसलिये तीन श्लोक एकत्र हैं।

तृतीय परिच्छेद



अथ रत्न-परीक्षा।

रत्नोत्तमानां गुणदोषजातं
तद्धारकाणां च शुभाशुभानि ।
वर्णप्रभेदैर्मणिमण्डलानां
प्रस्तावतः सत्वहिताय वच्मि ॥ १ ॥

प्रसंगवश रत्न धारण करनेवाले मनुष्योंके हितार्थ रत्नका वर्ण भेद क्रमसे गुण दोष तथा शुभाशुभ कहते हैं ।

दोषापमृष्टं मणिमप्रबोधा-
द्बिभर्ति यः कश्चन कश्चिदेव ।
तं बन्धदुःखामयबन्धुवित्त
नाशादयो दोषगणा भजन्ते ॥ २ ॥

जो पुरुष जरासा मलिन तथा दूषित रत्न अज्ञानवश धारण करता है, उसके बंधन तथा अनेक रोग होते हैं और बन्धु, धन और इष्ट वस्तुओंका विनाश होता है ।

गुणाः सुरुग्गौरवकान्तिमत्ताः
स्नैग्ध्यं महत्वं समताऽच्छता च।
दोषास्तथा बिन्दुकलङ्करेखा-
स्त्रासोमलः काकपदं लघुत्वम् ॥ ३ ॥

हीरेके इतने गुण हैं—वह खूब गोल हो, सुन्दर हो, भारी हो, साफ झलकता हो, खूब चिकना हो, साथ ही जो जितने बड़े होंगे उनका उतना अधिक मूल्य होगा। दोष इतने हैं—यदि उनमें बिन्दु हों अर्थात् जलमें जैसे बुलबुले पड़ते हैं उसी प्रकार छींटका चिह्न, कलङ्क अर्थात् जरा स्याही और मैलापन लिये हुए रंग हो, रेखा हो, कटा या टूटा हो, गड्ढा हो, कौवेका पाँव जैसा चिह्न हो और हलका हो तो उसे दूषित समझना चाहिये।

तीक्ष्णाश्रिधारत्वसविस्तरत्वं
गुणौ तु वज्रस्य वदन्ति तज्ज्ञाः।
शुक्त्युद्भवानां मृदु सूक्ष्मभेद
सुवृत्त शुक्लत्वममी गुणाश्च ॥ ४ ॥

रत्न परीक्षक अथवा जौहरी लोग हीरेके दो गुण और कहते हैं—इनमें एक यह कि तेज हो और तलवारकीसी धार हो तथा चौड़ा हो। इसी तरह सीपके मोतीके गुण

यों हैं—मनोहर हों खूब गोल हों जरासा छेद हो और खूब साफ झलकते हों।

स जातिरत्नं परिवृद्धिहेतु-
र्निधानलक्ष्मीसुतसेवकानाम्।
आरोग्यसौभाग्यफलायुषां च
विजातिकं त्वाशु विनाशबीजम् ॥ ५॥

सुजाति अर्थात् उपर्युक्त शुभ लक्षणोंसे युक्त रत्नोंके धारणसे धनियोंकी आयु और सम्पत्ति बढ़ती तथा सौभाग्य बढ़ता है, परन्तु—विजातीय अर्थात् कुलक्षण युक्त रत्नोंके धारणसे वे सर्वनाशके कारण हैं। *

बन्धूकपुंस्कोकिलनेत्रगुञ्जा
तुल्यच्छवियोऽत्र स पद्मरागः।
आकृष्टनीलीरसबुद्बुदाभो
यो वाऽलिपृष्ठद्युतिरिन्द्रनीलः ॥ ६ ॥

---

* टि॰ तथा च रत्न शास्त्रे—

"गुणवद्गुणसम्पदां प्रसूतिर्विपरीतं व्यसनोदयस्य हेतुः।" इति।

गुणवान् रत्न सौभाग्य और सम्पदाओंका देनेवाला है और गुणहीन रत्न दुःख दारिद्र्यका कारण होता है।

बन्धूक गुलदुपहरियाके फूलके समान, कोयलकी आँख जैसा तथा रत्ती चिरमटीके समान लाल रंग वाला पद्मराग होता है या जिसे जौहरी लोग लाल कहते हैं। निचोड़े हुए नील रसके बुलबुलेके समान वर्णवाला इन्द्र नील (नीलम) होता है। अथवा भौंरेके पंखके समान कान्तिवाला भी नीलम होता है।

खद्योतपृष्ठनवशाद्वलशैवलानां
तुल्यत्विषो मरकता मणयो भवन्ति।
रत्नोत्तमस्य हि शुभाशुभकारणस्य
व्याख्याऽत्र तन्न, कथिता अधिकाश्चमुख्याः ७

जुगनूके पंखकी तरह चमकदार, नयी घास और जलमें होनेवाले सिंवारकी समान हरित कान्तिवाला मरकत मणि (पन्ना) होता है। यह प्रकरणवश मुख्य रत्नोंका गुण दोष कह दिया है, किन्तु ग्रन्थके विस्तारके भयसे अधिकतर रत्नोंका शुभाशुभ नहीं कहा।

वैदूर्य एकः शितिकण्ठनील-
स्तथाऽपरो वेणुदलप्रकाशः।
नानाविधा आकरयोनिभेदै-
र्वज्रं च मुक्तामणयश्च सन्ति॥ ८॥

एक प्रकारका वैदूर्य मणि (लहशुनियां) मोरके कण्ठके समान वर्णवाला होता है, दूसरा बाँसके पत्तेके समान होता है। इसी प्रकार हीरा मोती पन्ना आदि खान और रंगके भेदसे अनेक प्रकारके होते हैं।

इति तृतीयः परिच्छेदः।



चतुर्थ परिच्छेद

नानाविदग्धवासा
मुख्या मदनप्रदीपकाः ख्याताः।
वरकामुकः प्रयत्ना-
च्छिक्षयेतादौ सुगन्धशास्त्रेभ्यः॥ १॥

अनेक प्रकारकी मनोहर सुगन्धित वस्तुए हैं जो विशेषतः कामोद्दीपक हैं इसलिये धनी कामीको प्रयत्न पूर्वक पहले ही सुगन्ध शास्त्र या आयुर्वेद शास्त्रसे उनका संग्रह कर लेना चाहिये।

लोकेश्वरादिकेभ्यो-
ऽपटुमति दुर्बोधगन्धशास्त्रेभ्यः।
संगृह्य सारभागं
प्रविधास्ये सुप्रसिद्ध पदैः॥ २॥

लोकेश्वर आदि नामके गन्धशास्त्रोंसे सार भाग लेकर अनभिज्ञ जनोंके दुर्बोध विषयको सरल रूपसे कहते हैं।

कुन्तलकक्ष्य गृहोदर
वसन वदनसलिलपूगफलवासान्।
स्नानोद्वर्तनचूर्णं
वर्ती द्वे धूपदीपाख्ये ॥ ३ ॥

केश (बाल) बाहुमूल (बग़ल) का भीतरीभाग, गृह, वस्त्र, मुख, जल, सुपारी, इनको सुगन्धित करना। और स्नानके समयका उबटन भी सुगन्धित करना; और सुगन्धित धूपबत्तीसे घरको सुगन्धित करना चाहिये।

केशपटवासः (बालोंका सुगन्धकरण)

रात्रिको दीपकमें जलनेवाली बत्तीको भी सुगन्धित करना चाहिये। भाव यह कि जहांतक प्रकाश पहुंचे वहाँतक सुगन्ध आती रहे।

नखकर्पूरकुंकुमा-
गुरुशिह्लकमिति च केशपटवासः।
क्रमवृद्धिभागरचितं
भागत्रयशर्करासहितम् ॥ ४ ॥

नख (नखला) भाग १, कर्पूर भाग २, केशल भाग ३, अगुरु भाग ४, शिलारस भाग ५, इसी प्रकार इनके

तृतीयांश शक्कर मिलाकर केश-वास अर्थात् बालोंको सुग न्धित करना चाहिये।

कक्षवास (बगलका सुगन्धि करण)।

पत्रकशैलजशिह्लक
कुंकुममुस्ताऽभया चेति।
त्रिगुडाः काक्षिकवासो
ग्रहतिथिशिखिरुद्रवेदकर भागाः ॥'

तेजपाल भाग ६, शिलाजीत १५, शिलारस ३, केश भाग ११ नागरमोथा भाग ४, छोटी हर्रे भाग २ इनव तीन भाग गुड़, सबको मिलाकर लगानेसे कक्ष अर्थात् बा मूल सुगन्धि प्रस्तुत होती है। अर्थात् बगल लगानेसे बगलमेंसे भी सुगन्ध आती है। बहुतसे मनुष्य का पसीनेके कारण बगलसे दुर्गन्ध निकलती है। इस दुर्गन्ध नष्ट होकर सुगन्ध आती हैं।

गृहवास (घरमें सुगन्ध आना)।

कस्तूरी कर्पूरं कुंकुम
नख मांसि बालागुरुकं च।
चन्दन गुडकं क्रमशो
वर्धित भागं तु गृहवासः॥ ६॥

कस्तूरी भाग १, कर्पूर २, केसर ३, नख ४, जटामांसी ५, खस ६, अगुरु ७, सफेद चन्दन ८, गुड़ ९ इनको मिला कर घरको सुगन्धित करना चाहिये। इसको मिलाकर घरके नाले, चूहोंके बिल मोरियोंके पास छिड़कनेसे घरमेंसे दुर्गन्ध नष्ट होकर सुगन्ध आती हैं।

सामान्य मुखवास (मुख सुगन्धित करण)

जातीफलकस्तूरी
कर्पूरंचूतवारि संस्थितं।
धूपितमगुरुकशिह्लक
मधुगुडसितैश्च मुखवासः ॥ ७ ॥

जायफल, कस्तूरी, कर्पूर इनको आमके पत्रके स्वरसमें पीसकर अगुर, मधु (सहत), गुड़, चीनी मिलाकर चिलम में भरकर धूमपान करे तो मुख सुगन्धित हो।

विशेष मुखवास।

क्रमवर्धितं त्वगेला
मांसी शठ्यगुरु कुंकुमं चापि।
घन चन्दन जाती
फललवङ्ग कङ्कोल कर्पूरम् ॥ ८ ॥

अष्टांश वंशरोचन
सुकलितमति स्वल्प शर्करा सहितम् ।
पिष्ट्वा सहकार रसै-
र्मुखवासो भूमिपालानाम् ॥ ६ ॥

दालचीनी भाग १, छोटी इलायची २, जटामांसी ३, कचूर ४, अगुरु ५, केसर ६, नागर मोथा ७, सफेद चन्दन ८, जायफल ६, लवङ्ग १०, शीतल चीनी ११, कर्पूर १२, इनका आठवाँ भाग उत्तम वंशलोचन और थोड़ासी शर्करा मिलाकर आमके रसमें पीसकर गोली बनाकर खाना। इससे राजाओंके सेवन योग्य मुखवास या मुखसुगन्धि प्रस्तुत होती है। पूर्वोक्त मुखवास सर्व साधारणके लिये है। किसीका मत यह है इसको भी चिलमकी तरह पूर्वोक्त प्रकारसे पीना चाहिये। मेरे मतमें दोनोंकी गुटिका मुख में धारण करनेसे मुखमें सुगन्ध आती।

जलवास (जल सुगन्ध करण)

सूक्ष्मैला कस्तूरी
कुष्ठतगर पत्र चन्दनैः सुतनु ।
मलयानिल जलवासं
रचय भूमिपालतिलकानाम् ॥ १० ॥

हे सुन्दर अङ्ग वाली! महाराजाओंके लिये इन सुगन्धित वस्तुओंसे संयुक्त एवं मलयाचलकी वायुसे सुवासित जल बनाओ, वे कौन २ सी सुगन्धित वस्तु हैं सो कहते हैं—छोटी इलायची, कस्तूरी, कूढ़, तगर तेजपात, और सफेद चंदन इनको मिलनेसे जलवास प्रस्तुत होता है।

पूगवास (सुगन्धित सुपारी)।

कुष्ठ तगर जातीफल
कर्पूर लवङ्गकैलाभिः।
वरतनु वासय शीघ्रं
पूगफलं भूमिपालानाम् ॥ ११ ॥

हे सुन्दरि! कूढ़, तगर, जायफल, कर्पूर, लवङ्ग और इलायची इनको मिलाकर राजाओंके योग्य सुगन्धित सुपारी तैयार करना चाहिये।

स्नानीय चूर्णवासः।

त्वगगुरुमुस्तकतगरं
चौरशठीग्रन्थिपर्णाक नखं च।
कस्तूरी संयुक्तं
स्नानीयं तत्प्रशस्यते सद्भिः॥१२॥

दालचीनी, अगुरु, नागरमोथा, तगर चौर अर्थात्

गठिवन या भटेउर, कचूर, तेजपाल, नख और कस्तूरीको बराबर २ मिलानेसे स्नानकालिक सुगन्धित वस्तु प्रस्तुत होती है। इसके जलसे स्नान करनेपर शरीर सुगन्धित होता है।

चतुस्सम या सुगन्धितकर मसाला।

कस्तूरी कर्पूरं
कुंकुम चन्दनमुदाहृतं क्रमशः।
शशिकरवेदकलाकृत
भागेन चतुस्समो गदितः ॥१३॥

कस्तूरी भाग १, कर्पूर २, केशल, सफेद चंदन १६ इस क्रमसे इनका भाग मिलनेपर चतुस्सम होता है। * इस गणसे समस्त सुगन्धित चीजें बन सकती हैं।

सामान्य उद्वर्तन (उबटना)

कस्तूरीकर्पूरं
चन्दनशैलेयनागागुरुकं च।
उद्वर्तनमिदमुत्तं-
ममविरत सेव्यं नरेन्द्रस्य ॥ १४ ॥

* टि० चतुस्समका भेद—कस्तूरी भाग २, केशर ३, कर्पूर ४ इनको मिलाकर भी दूसरे ढंगका चतुस्सम होता है।

कस्तूरी, कपूर, श्रीखण्ड, छड़ीला, नागकेशर और अगुरु इनको मिलानेसे राजा महाराजाओंके सदा सेवन योग्य उबटन तैयार होता है।

राजयोग्य उद्वर्तन (उबटन)।

शैलज (१) वाललवङ्गक
त्वक्पत्रक सुरभि(२) शिह्लतगरं च।
मांसीकुष्ठ समेतं
चूर्णं क्षितिपालतिलकानाम् ॥१५॥

छाड़ छड़ीला, वाल (खस), लवङ्ग, दालचीनी, तेजपात, हरद्वारीघास, शिलारस, तर, जटामांसी, कूढ़का चूर्ण राजाओंके सेवन योग्य होता है। यह उबटन राजाओंके योग्य है।

राजार्ह रतिनाथ धूपवर्ती।

कर्पूरागुरु चन्दन
मुस्तकपूति (३) प्रियंगु वालं च।

---

१ शैलजका शिलाजीत अर्थ जगज्ज्योतिर्मल्लने संस्कृतकी टीकामें किया है। वह प्रकरणाभावसे अशुद्ध है। यहां छड़ीला अर्थ करना चाहिये। २ संस्कृत टीकाकारने सुरभि शिल्ह इस शब्दसे सुरभि शब्दका भूलकर उत्तम शिल्ह अर्थ किया है। वह अशुद्ध हैं। यहां हरद्वारी घासको लेना चाहिये। ३ टीकाकारने पूति शब्दसे पूतिकरं जो लिखा है। वह अशुद्ध है यहां रोहिस तृण लेना चाहिये।

मांसी चेति नृपाणां
योग्या रतिनाथ धूपवर्तिरियम् ॥१६॥

कर्पूर, अगुरु, सफेद चंदन, नागरमोथा, रौहिवत्सा, प्रियंगु, वाल, जटामांसी इनकी धूपवत्ती राजाओंके योग्य होती है। इसका नाम रतिनाथ धूपवर्ती है।

रतिनाथ कान्ता धूपवर्ती।

नखागुरु शिह्लक वालक
शैलेय (१) कुन्दुरुचन्दनश्यामाः(२) ॥
क्रमवृद्धि भागरचिता
वर्ती रतिनाथ कान्तेयम् ॥ १७ ॥

नख १, अगुरु २, शिह्लक ३, वाल (खस) कुन्दुरु ५, छड़ीला, सफेद चंदन ७, श्यामा ८, कस्तूरी मिलाकर रतिनाथ कान्ता नामकी धूपवर्ती बनती है।

मनोद्भव दीपवर्त्तिका।

सुरदारुमरुवमुस्तक

१ शैलेयका अर्थ प्रकरण विरुद्ध शिलाजीत अर्थ किया है। यह भी अशुद्ध है यहां छाडछवीला—छडपुरी सुगंधित द्रव्य लेना चाहिये।

२ टीकाकारने श्यामा शब्दका अर्थ भूलसे नहीं किया, परन्तु श्यामाका अर्थ कस्तूरी है।

लाक्षागुरु शालचूर्णकर्पूरम्(३)।
नृपवासक गृहयोग्या
मदनोद्भव दीपवर्त्तिरियम् ॥ १८ ॥

देवदारु, मरुवा, नागरमोथा, लाख अगुरु, शीतलचीनी (राल) कर्पूर इनके योगसे बनी धूपवर्त्ती कामोद्दीपक है।

गन्धरसागुरु गुग्गुलु
सर्जरस पूतिकर्पूरम्।
श्रीवास शिह्लक चन्दन-
मित्यपरा दीपवर्त्तिरियम् ॥१९॥

गन्धरस, (सुगन्धित बाल) अगुरु, गुग्गुल, राल कर्पूर, विरोजासन, शिलारस, सफेद चंदन इनको मिलाकर एक और प्रकार की धूपवर्त्ती होती है।

इति चतुर्थः परिच्छेदः।

---

३ शालचूर्णका अर्थ टीकाकारने शालपर्णी भूलसे लिखा है। शाल शब्दका अर्थ सर्जरस (राल) है। परन्तु फिर भी चूर्णका अर्थ बिलकुल ही भूल है चूर्णका अर्थ चूरा समझकर नहीं लिखा, इससे मालूम पडता है टीकाकार पूर्ण विद्वान् होनेपर भी आयुर्वेदसे अनभिज्ञ था। यहां चूर्ण शब्दसे कंकोलमिर्च (शीतलचीनी लेना चाहिये)।

पञ्चम परिच्छेद

—:**:०:**:—

भाषा संकेत ।

कलाकलापैश्च गुणौ समस्तै-
गुणौरसंकेतविदं हि कान्तम् ।
प्रम्लाननिर्माल्यमिवोत्सृजन्ति
गुणाधिका नागरिकास्तरुण्यः ॥१॥

समस्त गुणों तथा काम सम्बन्धी चौंसठ कलाओंमें निपुण नागरिक तरुणी गुण तथा संकेतहीन स्वामीको मुरझायी हुई पुष्पमालाकी तरह त्याग देती है ।

ततोऽन्य चिन्तां परिहृत्य कामी
यतेत संकेतकशास्त्रकेषु ।
सतां हि सम्मानसहस्रभाजां
यूनां वधू धिक्कृतिरेव मृत्युः ॥ २ ॥

अन्यान्य कलाओंमें चाहे युवक सहस्रों सम्मानका पात्र क्यों न हो किन्तु कामकलाकी अनभिज्ञताके कारण यदि

बध्का धिक्कार सहन करना पड़ा तो उसका मरण है, इस लिये गृहस्थ संसारमें प्रवेश करनेवाले नवयुवकका सर्व प्रथम काम कलाओंमें चतुरता प्राप्त करना ही परम कर्त्तव्य है ।

नारीसंकेतकं वक्ष्ये
वक्रभाषाङ्गमुद्रयोः ।
पोटलीवस्त्रपुष्पाणां
ताम्बूलस्याप्यनुक्रमात् ॥ ३ ॥

वक्र भाषा या वक्रोक्ति, अर्थात् बोलना कुछ और उस का अभिप्राय कुछ और हो, अङ्गमुद्रा अर्थात् अङ्गभङ्गी इनके सम्बन्धमें स्त्रीका संकेत कहते हैं। पोटली पोटरी या गठरीमें रखी हुई चीजोंका संकेत (इशारा) वस्त्रका फूल और पानका संकेत भी क्रमशः कहते हैं ।

फलं पुंसि, स्त्रियां पुष्पं,
कुलप्रश्नेऽङ्कुरः स्मृतः ।
दाडिमं तु द्विजे ज्ञेयं,
पनसः क्षत्रिये स्मृतम् ॥ ४ ॥

पुरुषमें फलका संकेत, स्त्रीमें फूलका संकेत, कुलमें अंकुरका संकेत, ब्राह्मणमें दाड़िम (अनार) का और क्षत्रियमें कटहलका संकेत जानना चाहिये ।

कदलीजं फलं वैश्ये,

तथाम्रं शूद्रजे पुनः।

राजपुत्रे द्वितीयेन्दु-

र्घनाच्छायस्तु भूपतिः ॥ ५ ॥

वैश्यमें केलेका, शूद्रमें आमका, राजपुत्रमें द्वितीया चन्द्रका और राजामें मेघका संकेत जानना।

दुष्कुले कालपुष्पं स्यात्

सरः सामन्त पुत्रके।

मध्यशो यून्यपक्वं स्याद्

बाले पक्वं तु बृद्धके ॥ ६ ॥

दुष्कुल अर्थात् हीन कुलमें श्याम पुष्प समझना चाहिये। सामंत पुत्रमें सरोवरका संकेत जानना चाहिये। युवामें मध्याह्न तथा बालकमें अपक्व और वृद्धमें पक्वका संकेत समझना चाहिये।

ब्राह्मण्यां कुन्द पुष्पं स्या-

द्राजपुत्र्यां तु मालती।

मल्लिका वैश्यपुत्र्यान्तु

शूद्रपुत्र्यान्तु कैरवम् ॥ ७ ॥

ब्राह्मणीमें कुन्दके फूल, राजपुत्रीमें मालती, वैश्यपुत्रीमें मल्लिका और शूद्रकी पुत्रीमें कुमुदके फूलका संकेत करना चाहिये ।

वणिक् पुत्र्यां सरोजं च,
महत्यामुत्पलं तथा ।
कामुके भ्रमरः प्रोक्तः
कामिन्यां चूतमञ्जरी ॥ ८ ॥

वणिक्पुत्रीमें कमलका, मन्त्रोंकी पुत्रीमें उत्पलका, कामी पुरुषमें भ्रमरका और कामिनीमें आमकी मञ्जरीका संकेत कहा है ।

तथाह्वानेऽङ्कुशश्चापि
प्राकारो वारणे स्मृतः ।
छन्नचन्द्रो निशीथिन्यां,
दिनेऽच्छन्न रविः स्मृतः ॥ ६ ॥

इसी तरह बुलानेमें अङ्कुश, वारण या मना करनेमें प्राकार अर्थात् दीवारका आकार बताना याने उसका संकेत, रातके लिये ढका हुआ चन्द्रका और दिनके लिये प्रकाशमान सूर्यका संकेत करना चाहिये । *

* टि० अंकुश अर्थात् अंकुश मुद्रालक्षण ; यथा—"ऋज्वी च

आद्ये यामेऽपि शङ्खः स्या-
न्महाशङ्खो द्वितीयके ।
पद्मस्तृतीयके यामे
महापद्मश्चतुर्थके ॥ १० ॥

पहले पहरके लिए शङ्खका, दूसरे पहरके लिये महा शङ्खका तीसरेके लिये पद्मका और चौथे पहरके लिये महापद्मका संकेत है।

रामस्तु पञ्चमे यामे
विरामः षष्ठ उच्यते ।
प्रवरः सप्तमे ज्ञेयः
प्रत्यूषश्च तथाऽष्टमे ॥ ११ ॥

पञ्चम मासके लिए रामका संकेत, छठेके लिये विराम सप्तमके लिये प्रवर और अष्टमके लिये प्रत्यूषका संकेत समझना ।

इति पञ्चम परिच्छेद ।

मध्यमां कृत्वा तन्मध्यपर्वं मूलतः । तर्जनीं किञ्चिदाकुञ्चेत्सा मुद्रांकुश संज्ञिता ॥" मध्यमा अंगुलीको सीधा करके उसके मध्यपर्वके पास तर्जनीको धानकी बालकी तरह थोडी संकुचा ले तो अंकुश मुद्रा होगी ।

षष्ठ परिच्छेद

—❋❋❋❋❋❋❋—

अङ्ग सङ्केत।

क्षेमप्रश्ने कर्णलता,
कथिता कथनेऽपि सा।
कचदंशस्तु कामार्त्ता
वुरः स्नेहे शिरोऽर्चने ॥ १ ॥

कुशल प्रश्नमें और कहनेमें कानका स्पर्श, कामार्त्त अवस्थामें बालका स्पर्श और प्रेम प्रकट करनेमें वक्षस्थलका प्रश्न हाथोंसे करना चाहिये।

मध्यमावसरप्रश्ने
तर्जनी पृष्ठयोजिता।
अवसरेऽञ्जलिर्ज्ञेय
आह्वाने कुञ्चितांगुलिः ॥ २ ॥

अवसर या समय सम्बन्धी प्रश्नमें मध्यमा अङ्गुलोको तर्जनी पर चढ़ाना और अवसर आनेपर अञ्जलि बाँधना

और बुलानेमें उसी अञ्जलिको विपरीत अर्थात् उल्टा कर लेना ।

अंगुष्ठतर्जनीमध्याः
पूर्वदक्षिणपश्चिमाः ।
उत्तरानामिका चेति
दिशो ज्ञेया अनुक्रमात् ॥ ३ ॥

पूर्व दिशाके संकेतके लिये अङ्गुष्ठ, दक्षिणके लिये तर्जनी पश्चिमके लिए मध्यमा और उत्तरके लिए अनामिका इसी तरह चारों दिशाओंके लिए क्रमशः जानना चाहिये ।

कनिष्ठा मूलमारभ्य
रेखाः पञ्चदशक्रमात् ।
अंगुष्ठस्योर्ध्व रेखान्ताः
स्मृताः प्रतिपदादिषु ॥ ४ ॥

कनिष्ठाके मूलसे आरम्भ कर अंगुष्ठकी ऊर्ध्वरेखा पर्यन्त प्रत्येक अंगुलियोंमें तीन तीन २ रेखा करके पंद्रह होती हैं और उन्हीं रेखाओंमें पंद्रहों तिथियोंका संकेत होता है।

शुक्ले वामकरे ज्ञेया
असिते दक्षिणे करे ।

यद्यत् स्पृशन्ति कामिन्य-
स्तस्यार्थं निपुणः स्मरेत्॥ ५॥

शुक्ल पक्षमें बाएं हाथमें रेखा करना और कृष्णपक्षमें दाहिने हाथमें रेखा करना। कामिनियाँ जो जो स्पर्श करें उन स्थानोंको सङ्केत-कुशल कामी स्मरण करे।

इति षष्ठ परिच्छेद।



सप्तम परिच्छेद

अथ पोटली संकेतम्।

स्नेहे सुगन्धिवस्तूनि
पूगं खदिरसारकम्।
अतिस्नेहे च सूक्ष्मैला
जातीफललवङ्गकम् ॥ १ ॥

स्नेह-सूचनाके लिए सुगन्धित वस्तु, सुपारी, खदिरसार (कत्था) और अतिशय स्नेहमें छोटी इलायची, जायफल और लवङ्गसे सङ्केत होता है।

स्नेहच्छेदे प्रवालं स्या-
त्तद्युगं चिरसङ्गतौ।
कामज्वरे कटुद्रव्यं,
मृद्वीका संगमाशये ॥ २ ॥

स्नेहच्छेदकी सूचनामें प्रवाल (मूंगा) बहुत दिनोंवे

संगममें दो मूँगे, कामज्वरमें कड़वी वस्तु और सद्यः संगमके तात्पर्यमें मुनक्काका संकेत होता है।

देहार्पणे तु कार्पासं,
जीरं जीवसमर्पणे।
भल्लातकफलं भीतौ,
भयाभावे हरीतकी॥ ३॥

शरीर-समर्पणके संकेतमें कपास, जीव-समर्पणके सङ्केतमें जीरा, भयके सङ्केतमें ४ भल्लातक या भिलावा और भयके अभावमें हर्रे। यह संकेत ठीक है, क्योंकि हर्रेका नाम अभया भी है।

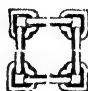
सिक्थेन निर्मिता मुद्रा
पञ्चांगुलिनखाङ्किता।
वेष्टनं रक्तसूत्रेण
पोटली परिकीर्त्तिता॥ ४॥

मोमकी एक टिकिया रुपयेकी तरह बना ले, तब उसमें पाँचों अंगुलियोंके नखसे चिन्ह करदे और लाल सूतसे उसे बाँध दे, तो वह पोटली कहाती है।

मदनासंगतः सिक्थः
संरागे रक्तवेष्टनम्।
पञ्चवाण क्षतत्वेन
पञ्चांगुलि नखक्षतम्॥ ५॥

मदनकी क्रीड़ाके संकेतमें मोम, अनुरागके लिए लाल धागेका बन्धन और पञ्चवाण अथवा कन्दर्प द्वारा क्षत होनेके कारण पाँचो अंगुलियोंका नख चिन्ह किया जाता है। अतएव यह पोटलो सङ्केत हुआ।

इति सप्तम परिच्छेद।



अष्टम परिच्छेद



वस्त्र सङ्केत ।

स्मरेणोद्भिन्न देहत्वे
सच्छिद्रं वस्त्रमुत्तमम् ।
संरागे रक्त रागे च
रक्तं काषायपीतकम् ॥ १ ॥

कन्दर्पके बाणसे जिसका शरीर छिन्न-भिन्न हो रहा हो, ऐसी अवस्थाका सङ्केत छिन्न-भिन्न किन्तु उत्तम वस्त्रसे होना है। उत्कट प्रेमकी सूचनामें पीला या गेरुआ वस्त्र ही देना चाहिये।

छिन्नवस्त्रं तु विच्छेदे
सदशाग्रन्थि सङ्गमे ।
एकं स्नेहे तथा चैवो-
भयस्नेहे तु तद्युगम् ॥ २ ॥

विच्छेद या वियोगमें छिन्न वस्त्र और मिलनेमें सूतेके साथ बन्धन, एकके स्नेहमें एक वस्त्र और स्त्री पुरुष दोनोंके स्नेहमें दो वस्त्रका सङ्केत होता है।

इति अष्टम परिच्छेद ।

नवम परिच्छेद

ताम्बूल संकेत।

ताम्बूलबिटकाः पञ्च
कीर्तिता नरपुङ्गवैः।
कौशलांकुश कन्दर्प
पर्यङ्क चतुस्त्रकाः॥ १॥

बड़े-बड़े लोगोंने पानके बीड़ेके पाँच प्रकार कहे हैं। पहला कौशल या शलाका (बीचकी नस) और सूत्रसे रहित (इधर उधरकी नसें) दूसरा अङ्कुशके आकार, तीसरा कन्दर्प याने मध्यमें बाणके आकार, चौथा पर्यंक या पलङ्गके आकार और पाँचवाँ चौकोन कहा है। कौशला वीटिका, वह जिसमें पानकी नस निकालकर साफ कर बनाया गया हो, त्रिकोण, तीनकोण वाला कन्दर्प कहाता है।

कौशलः स्नेहबाहुल्ये
चाहृतावंकुशस्तथा।

मदनार्तौ च कन्दर्पः
पर्यङ्कः सङ्गमाशये॥ २॥

स्नेहके आधिक्यमें कौशल नामका बीड़ा अर्थात् जिस पानके बीड़ेमें लगानेकी कारीगरी अच्छी हो, उसका प्रयो-ग करना, आहरणमें अङ्कुशाकार बीड़ेका प्रयोग करना मदन व्यथामें कन्दर्पाकार (तीन कोनेवाला) बीड़ा देना और सङ्गमके आशय अर्थात् सम्भोग सङ्केतमें पलङ्गके आकारका पानका बीड़ा देना चाहिये।

चतुरस्राभिधानो यो
बीटोऽनवसरे सदा।
अपूगपर्णमप्रीतौ
स्नेह एलादि संयुतम्॥ ३॥

सर्वदा अनवसरके संकेतमें चौकोन पानका बीड़ा दिखाना चाहिये, प्रेमके अभावमें बिना सुपारीका पान और प्रेमके सद्भावमें इलायचीके साथ पान देना चाहिये।

पृष्ठसंश्लेषपर्णं च
विच्छेदे कृष्णवेष्टनम्।
मुखसंलग्नपर्णो चा-
विच्छेदे रक्तवेष्टनम्॥ ४॥

वियोगके संकेतमें पानको उल्टा लगाकर काले धागेसे बाँधकर दिखावे और संयोगके संकेतमें एक पानके मुखको दूसरे पानके मुखमें मिलाकर उसमें लाल धागेसे बाँधकर दिखावे।

मध्ये विदारितं पर्णं
त्यजने कृष्णवेष्टनम् ।
संरक्तपटसूत्रेण
स्यूतं प्राणान्तसंगमे ॥ ५ ॥

त्यागके संकेतमें पानको बीचो-बीच फाड़कर काले धागेसे बाँध देना और प्राणान्तिक अवस्थामें लाल धागेसे सी देना चाहिये।

निर्भिन्न योजितं पूगं
मध्ये कुंकुम पूरितम् ।
बाह्ये चन्दनपङ्काक्त-
मत्यर्थमनुरागतः ॥ ६ ॥

जहाँ अत्यन्त अनुराग हो वहाँ पानको टुकड़े-टुकड़ेकर जोड़ देना, मध्यमें केसरसे पूराकर देना और बाहरमें चन्दनका लेप लगा देना!

इति नवम परिच्छेद ।

दशम परिच्छेद

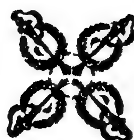


पुष्पमाला संकेत।

सं रागारक्तिरागेषु
रक्तकाषाय पिञ्जरैः।
सूत्रै रस्नेहके कृष्णैः
पुष्पमाला प्रगुम्फिता ॥ १ ॥

अनुरागमें लाल, विरागमें गेरुआ, और स्नेहके अभावमें काले धागेसे गूंथी हुई मालाका व्यवहार करना चाहिए।

इति दशम परिच्छेद।



एकादश परिच्छेद



यदपि न सुलभेह सा मृगाक्षी
सकलकलाकलनासु पण्डिता या ।
तदपि निरवशेष कामशास्त्रा-
भिहितपदेषुमतिं विवर्द्धयेत् (सा) ॥१॥

सकल कामकला क्षलितको करनेमें चतुर मृगनयनी कामिनी यद्यपि सुलभ नहीं है तथापि पुरुषको भी चाहिए कि समस्त कामशास्त्रोक विषयोंका पूरा ज्ञान प्राप्त करे ।*

कथमपि यदि संगमस्तया स्याद्
व्रजति तदाहि पराभवं वराकः ।

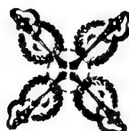
---

* टि॰ यद्यपि संगीत वाद्य नृत्य आदि कलाओंमें प्रत्येक स्त्रीका निपुण होना असम्भव है तथापि यहां कामशास्त्रक अंगभूत जितनी कलाएं हैं, यथा बालोंको अच्छी तरह सँवारना, कौतुकागारकी सजावट तथा आलिंगन आदि कलाओंकी कुशलता प्राप्त करना आवश्यक है ।

अविदितयुवतीकृतैकसङ्के-
तक इति रत्नकुमारको यथैव ॥ २ ॥

यदि गुणवती स्त्रीसे मूर्खों का सम्भोग भी होता है तो पश्चात् उसे लज्जित होना पड़ता और कभी पराभव भी पाता है। यथा युवती द्वारा किये हुए संकेतको न जान कर रत्नकुमारीकी दुर्दशा हुई ।

इति एकादश परिच्छेद ।



द्वादश परिच्छेद

मृदुह्रस्वध्वजो यत्र
प्रियोऽशक्तो द्रुतच्युतिः ।
तत्र स्त्रियश्च काठिन्यात्
स तु नीचरतोद्भवः ॥ १ ॥

जहाँ स्वामी असमर्थ हो कोमल और छोटा साधन (लिङ्ग) हो, साथही शीघ्र-स्खलन होता हो तथा स्त्री कठिनतासे द्रवित होती हो ऐसे रतको नीच रत कहते हैं।

नारी नीचरतोद्विग्ना
स्वामिनं नाशयत्यपि ।
श्रूयते चैव कर्णाटे
कान्तया निहतः पतिः ॥ २ ॥

कठिनता तथा विलम्बसे द्रवित होनेवाली स्त्री नीच रतसे बहुत घबड़ाती है, यहाँ तक कि स्वामीका मरण भी चाहती है। सुना जाता है कि कर्णाटक (आधुनिक मद्रास प्रान्त) में स्त्रीने स्वामीका वध किया।*

---

* टि० नीच रतमें स्त्रीको सन्तोष नहीं होता, इसलिये उसको

मृदुसाधनतादीनां
शमनाय ततोऽधुना ।
सिद्धप्रयोगसन्दोहान्
कथयामि समासतः ॥ ३ ॥

साधनकी कोमलता, लघुता आदि दोषोंको दूर करनेके लिए सिद्ध या अनुभूत प्रयोगोंको संक्षेपमें कहते हैं ।

दृढ़ी करण ।

नवमर्कटिकामूलं
छागमूत्रेण पेषयेत् ।
लेपान्निरन्तरं तस्य
लिंगं लोहोपमं भवेत् ॥ ४ ॥

कोंचका नया मूल बकरेके मूत्रके साथ पीसकर कुछ दिन बराबर लगानेसे साधन अत्यन्त दृढ़ होता है ।

सन्तोषार्थ पुरुषको औषधोंका प्रयोग करना चाहिये । पञ्चसायकमें लिखा है कि "तृप्तिं नो याति शीघ्रं द्रवतिन च रते चण्डवेगा प्रगल्भा ।" अर्थात् कर्णाट देशकी स्त्री शीघ्र तृप्त नहीं होती और न द्रवित होती, यही भावार्थ है ।

स्थूलीकरण ।

अश्वगन्धा बचा कुष्ठं
बला नागबला तथा ।
माहिषं नवनीतं च
गजपिप्पलिकायुतम् ॥ ५ ॥
पिष्ट्वा तेषां विलेपेन
स्थूलीकरणमुत्तमम् ।
कुर्यादादौ यदि स्वेदं
मर्द्दनं च प्रयत्नतः ॥ ६ ॥

असगन्ध, बच, कूठ़, बला, (खरैंटी) नागबला (गंगेरन) गजपीपल इनको समान भाग करके पीसे और भैंसके मक्खनमें मिलाकर इन्द्रियमें लेप लगावे । किन्तु इन्द्रियमें गरम जलकी भाफसे कुछ पसीना निकालकर तैलका मर्दन करे, जिसमें रोमकूप खुल जानेसे औषधका प्रभाव पड़े । पश्चात् लेप लगाना चाहिये । यह स्थूलीकरणका अच्छा प्रयोग है ।

बलीकरणम् ।

नागबलाद्वयमूलं
गोक्षुरकं तथाश्वगन्धा च ।

गोदुग्धेन पिबेत्स हि
नारीषु दुर्जयो भवति ॥ ७ ॥

खरैंटी, नागबला (गंगेरन) का मूल गोखरू और असगन्ध इनको दूधके साथ पीवे तो अतिशय रतिशक्ति बढ़े इसको बलीकरण कहते हैं ।

शुक्रस्तम्भन ।

एककरञ्जोदरकृत
सधवलशरपुङ्ख पारदो नियतम् ।
धारयति बीजवेगं
पुंसां वदनार्पितो यावत् ॥ ८ ॥

सुरतके समय एक करंज बीजके अन्दर सफेद शरफोंका और पारेको भी करंजमें रखकर मुखमें धरना चाहिए । जबतक रखेगा तबतक वीर्य स्खलित न होगा । यह निश्चित है ।

योनिद्रावणम् ।

पारदटङ्कणव्योष-
काकमाची मधुलिप्तं यत् ।

नारी स्यन्दति सुचिरं
बहुच्छिद्रामिव कलशम् ॥ ९ ॥

पारा, सुहागा, चौकिया, कोस, सोठ, कालीमिर्च पीपल काकमाची, (मकोयके फल) और मधु इनका लेप यदि इन्द्रियमें लगाकर संभोग करे तो पहले स्त्रीका ही शीघ्र रजःपात हो।

वशीकरणम्।

अलिपक्षं काकजिह्वा
स्वकर्णमलमश्रु बीजरक्तं च।
नयति वशं यां वाञ्छति
सुतरामशने विलेपे च ॥ १० ॥

भ्रमरका पङ्ख, कौवेकी जीभ, अपना कर्णमल, और आंसू, स्ववीर्य, अपना रक्त इनको खिलाकर या लगाकर जिसको वश करना चाहे करले।

गोरोचना शूकरशोणितेन
विभाविताऽनेकदिनं प्रयत्नात्।
स्याद्यन्मुखे तत्तिलकं प्रशस्तं
सर्वे जनास्तस्य वशे भवन्ति ॥ ११ ॥

बहुत दिन प्रयत्न पूर्वक गोरोचनको सुअरके रक्तमें मर्दन करके उसका तिलक लगानेसे सभी मनुष्य उसके वश हो सकते हैं।

गोरोचना प्रियंगु-
मनःशिला नागपुष्पचूर्णं च ।
अञ्जयेच्चक्षुरमीभि-
र्यस्तस्य वशत्वमेति जनः ॥ १२ ॥

गोरोचन,—प्रियंगु, मैनशिल, नागपुष्प, चम्पापुष्प इनके चूर्णको पुरुष आँखोंमें अञ्जनकी तरह लगाकर जिसको वश करना चाहे वश करले।

संभोगजं बीजरजो वरांगे
तल्लिप्तसंशुष्कसितार्कवर्तिः ।
तदञ्जनेनाञ्जितलोचनायाः
सदैव दासत्वमुपैति कान्तः ॥ १३ ॥

वराङ्ग सम्भोगसे पतित रज वीर्यमें सफेद मदारके रेशेको (जो रुईकी तरह होता है) भिगोकर बत्ती बनाकर सुखा ले, उस अञ्जनको वह स्त्री लगावे तो उसका कान्त उसका बन जाय अर्थात् सदाके लिये वशमें आ जाय।

सुवर्ण बीजं सुतजारयुक्तं
तत्पूर्णगर्भं कलविंकदेहम् ।
तं गोपयेद्भूतदिने श्मशाने
समुद्धरेद्भूत दिनेऽपरस्मिन् ॥ १४ ॥

पारा और पीले धतूरेके बीजको काला चटक पक्षीके पेटमें रखकर चतुर्दशी तिथिमें श्मशानमें जाकर खूब गुप्त रूपसे जमीनके नीचे गाड़ दे और उसे फिर चतुर्दशी तिथिमें ही उखाड़ लावे ।

चूर्णं यदेषां निजबीजयुक्त-
मचिन्त्यमाश्चर्य महाप्रभावम् ।
यस्योदरान्तः पतितं प्रदत्तं
नूनं स दासत्वमुपैति दातुः ॥ १५ ॥

उपर्युक्त वस्तुओंका चूर्ण अपने वीर्यके साथ मिलाकर जिसके पेटपर लगावे या खिलावे तो वह देनेवालेके वशमें अवश्यही आजाय । यह प्रयोग बड़ाही प्रभावशाली और आश्चर्यकारक है ।

इति द्वादश परिच्छेद ।

त्रयोदश परिच्छेद



शुद्धोऽशुद्धश्च संकीर्ण-
स्त्रिधा भावः प्रकीर्तितः।
शुद्धोऽपि त्रिविधो मन्द-
स्तीक्ष्णस्तीक्ष्णतरस्तथा ॥ १ ॥

शुद्ध अशुद्ध और संकीर्ण ये तीन प्रकारके भाव हैं। उनमें शुद्ध भाव भी तीन प्रकारके हैं यथा मन्द तीक्ष्ण और तीक्ष्णतर।

ईषत्प्रहसितो मन्द-
स्तीक्ष्णस्तु पुलकादयः।
तीक्ष्णतरस्तु निःश्वास
शोषितावयवोऽत्र यः ॥ २ ॥

मन्द मुसुकानको मन्द भाव कहते हैं। साथही यदि इसमें रोमाञ्च आदि हो जाय तो उसको तीक्ष्ण भाव कहते

हैं और यदि गर्म श्वास चले और अङ्ग गर्म हो जाय तो उसको तीक्ष्णतर अर्थात् बहुत तीव्र भाव कहते हैं।

हेलाविच्छित्ति विब्वोक
किलकिञ्चितविभ्रमाः।
लीलाविलासो हावश्च
विक्षेपो विकृतं मदः॥ ३ ॥
मोट्टायितं कुट्टमितं
मौग्ध्यं च तपनं तथा।
ललितं चेत्यमी हावा-
श्चेष्टाः शृंगारभावजाः॥ ४ ॥

शृङ्गार रसके भावोंसे उत्पन्न चेष्टाओंका नाम हाव है। यथा:—हेला, १, विच्छित्ति, २, विब्वोक, ३, किलकिञ्चित ४, विभ्रम ५, लीला ६, विलास ७, हाव ८, विपेक्ष ९, विकृत १०, मद ११, मोट्टायित १२, कुट्टमित १३, मुग्धता १४, तपन १५, और ललित १६ बस येही चेष्टायें हैं।

प्रौढेच्छा याऽभिरूढानां
नारीणां सुरतोत्सवे।

शृंगारशास्त्रतत्वज्ञै-
हेला सा परिकीर्तिता ॥ ५ ॥

सुरत कालिक उत्सवमें प्रौढ़ा स्त्रीकी उत्कट एवं उद्दाम (तेज) इच्छाको शृङ्गारशास्त्रके तत्त्वज्ञोंने हेला कहा है ।

तद्यथा:—

आसज्य स्वयमेव चुम्बनविधिं,
याञ्चा विनाऽऽलिङ्गनं,
तल्पान्ते जघनेन वेपथुमता
पर्यायणं जानुनि ।
क्रोधोत्कम्पममर्षयत्यनुनय-
स्तन्व्याः स्मरक्रीडया,
प्रौढेच्छाभिरतिः प्रियस्य हृदयं
हेलाबलात्कर्षति ॥ ६ ॥

पहले स्त्री ही हठात् चुम्बन करे, विना याचनाकेही आलिङ्गन करे, शय्यापर कम्पायमान जङ्घाओंसे प्रियकी जंघाओंपर जाय और कामक्रीड़ा सम्बन्धी अनेक हाव

भाव यदि दिखाने लगे, तो उस चेष्टा विशेषको हेला कहते हैं ।

प्रसाधनानां दयितापराधा-
द्यदीर्षयानादरतः सखीनाम् ।
प्रयत्नतो वारणमङ्गनाया
विच्छित्तिरेषा कथिता बहुज्ञैः ॥ ७ ॥

स्वामीके अपराधसे ईर्षा और क्रोधके वश एवं सखियों के अनादरसे जहां नायिका आभूषण और शृंगारका वारण करे उस चेष्टा विशेषको कामशास्त्रज्ञ पण्डितोंने विच्छित्ति कहा है ।

तद्यथाः—

सखि, प्रेयान् स्वामी
स्खलितमकरोत्, क्षन्तुमचितं,
विधत्स्वालंकारं
नहि नहि बलादर्पयसि किम् ।
अयि श्रेयश्चिन्त्यं
सततमबलाभिः प्रणयिनो,

विभूषां मा मुञ्च

प्रतनुमपि विच्छित्तिविषयाम् ॥८॥

विच्छित्तिका दृष्टान्त—

अरी सखी ! माना कि स्वामीने तेरा अपराध किया किन्तु तेरे को इतना बिगड़ना उचित नहीं, अब क्षमा कर दे। आभूषण पहन ! "नहीं नहीं मैं न मानूंगी बरजोरी क्यों पहनाती हो" सखी--अरी अब भी मान जा ! इतना कोप करना ठीक नहीं !! प्रियतमको सर्वथा सन्तुष्ट करना हम लोगोंका कर्त्तव्य है, इसलिए एक भी आभूषणको रोषसे मत त्याग।

अभिमतवस्तूपहृतावपि

गुरुदर्पादनादरस्तन्व्याः ।

स्खलित प्रियस्य संयम

ताड़नमभिधायि विव्वोकम् ॥ ९ ॥

स्वामी जहाँ स्त्रीके पसन्द लायक वस्तु लावे तो भी स्त्री बड़े अभिमानसे यदि उसे अनादर पूर्वक त्याग दे और स्वामीपर हाथ भी चला दे तो उस चेष्टाको विव्वोक कहते हैं

तद्यथा—

अनास्था वस्तूनामभिमतगुणानामपहृतो,

घनो गर्वस्तन्व्या रुषि विहसिताडम्बर विधिः।

प्रहारः पादाभ्यां यमनमपिकांच्या चरणयोः,
प्रियायाः विव्वोकं तदिदमतिधन्योऽनुभवति॥

दृष्टान्त—स्वामी जो वस्तु लावे उसपर अनास्था अर्थात् उपेक्षा, गर्वके साथ उत्तर, क्रोध, आडम्बर, हास्य, पाद-प्रहार और पांवसे काञ्ची (घुंघरू) का त्याग इन चेष्टा-ओंका नाम विव्वोक है ।

स्मितशुष्करुदितहसितत्रासक्रोध
श्रमाभिलाषाणाम् ।
सांकर्यं प्रियदर्शनहर्षात्
किलकिञ्चितं प्राहुः॥११॥

जहाँ प्रवाससे स्वामी आया हो और स्त्री उसे देखकर हर्षसे फूली न समाकर ईषद्धास, कभी सूखा रोना यानी बिना आँसूका रोना, क्रोध करना और कभी बहुत हंसना आदि चेष्टा दिखावे उसे किलकिञ्चित कहते हैं ।

तद्यथा:—

क्रन्दत्यवाष्पमभये भयमातनोति,
क्रोधं च नाटयति, तत्क्षणमेव हास्यम् ।
आलम्ब्य हर्षमबला किलकिञ्चिताख्यं,
हावं विभावयति पुण्यवतोऽन्तिकस्था ॥१२॥

किलकिञ्चितका उदाहरण:—बिना आँसूका रोना, भय-का कारण न रहनेपर भी भय करना, कभी क्रोध प्रकट करना और कभी हंस देना तथा आनन्द प्रकट करना इत्यादि नाना चेष्टाएँ 'किलकिञ्चित' कहाती हैं, जो किसी पुण्यवान् रसिकके ही भाग्यमें बदी होती हैं कि नायिका इस प्रकार करती है।

क्रोधः स्मितं च, कुसुमाभरणादियाञ्चा,
तद्वर्जनं च सहसैव विमण्डनं च।
आक्षिप्य कान्त वचनं लपनं सखीभि-
र्निष्कारणोत्थित गतं बत विभ्रमं तत् ॥१३॥

क्रोध, मन्द मुस्कान, फूल या मालाकी याचना, फूल लेकर फिर फेंक देना, फिर उठाकर उससे शृंगार कर लेना, स्वामीके वचनको टालकर सखीके साथ सो जाना निष्कारण इधर उधर करना 'विभ्रम' कहाता है।

आस्तां नाथ शुभं भवे, सखि त्वया
सिक्ता लता माधवी,
कान्तं तन्मम संप्रयच्छ कुसुमं
किं वाऽमुना मे फलम्।

मालयं निर्मलयामि, मौक्तिकमिदं
न्यस्तं त्वया दह्यता-
मित्थं विभ्रम संभ्रमो मदयति
प्रेयांसमेणीदृशः ॥ १४ ॥

हे नाथ! संसारमें तुम सुखी रहो, तुम्हारा कल्याण हो। अरी सखी! माधवी लताको तूने सींचा, मेरा फूल दे दे, इस फूलसे मुझे क्या? मैं मालाको साफ करती हूं। तू इस मोतीको जला इत्यादि युवतीका अनेक प्रकार अनाप शनाप बोलना भी आनन्ददायक ही होता है और इसे ही विभ्रम या प्रेम-प्रलाप कहते हैं।

अप्राप्तवल्लभसमागमनायिकायाः
सख्याः पुरोऽत्र निजचित्तविनोदबुद्ध्या।
आलापवेषगतिहास्यविलोकनाद्यैः
प्राणेश्वरानुकृतिमाकथयन्ति लीलाम् ॥१५॥

जिस नायिकाको स्वामीसे समागम न हुआ हो वह जहाँ अपने मनो-विनोदके लिये सखीके आगे, यदि स्वामीके बोलनेके जैसा बोले, स्वामीकी भाँति वेष धारण करे, उसी तरह चले, हँसे और हाले तो उसे लीला कहते हैं, तात्पर्य

कि स्वामीकी चाल ढालके अनुकरण (नकल) को लीला कहते हैं।

वेणीबन्धकपर्दिनी, सिततनुः
श्रीखण्ड पांसूत्करैः,
केतक्ये कदलेन्दु भृद्विसलता
व्यालोपवीतिन्यपि।
प्राक् पाणि ग्रहणाद्विनोदरभसात्
सख्याः पुरो लीलया,
कुर्वाणानुकृतिं हरस्य दिशतु
श्रेयांसि वः पार्वती ॥१६॥

लीलाका दृष्टान्तः—सखीके आगे विनोदवश महादेवजी का पूरा २ अनुकरण करनेवाली पार्वती तुम्हारा कल्याण करें। वह कैसी हैं, सो कहते हैं। जिन्होंने महादेवजीके जैसे मस्तकपर वालोंकी जटासी बना ली है आप तो गौरी हैं अर्थात् सोने जैसी कान्ति है, किन्तु उस गौर वर्णपर चन्दन लेपकर अंगको सफेद बना डाला है। महादेवजीके मस्तकपर इन्दुकला है, पार्वतीने भी केतकी दलके विन्यास से मस्तकपर इन्दुकला धारण कर ली है। उनके अङ्गमें भुजङ्ग लिपटे हैं किन्तु इन्होंने विसलता अर्थात् कमलनाल से इस कमीको पूरा कर लिया है।

यो वल्लभासन्न गतौ विकारो
गत्यासनस्थानविलोकनेषु ।
वृथास्मितक्रोधचमत्कृतिश्च
विकूणनं चास्यगतं विलासः ॥ १७ ॥

स्वामीके समीप जाकर जहां स्त्री व्यर्थ हंसी लगाती है, कभी क्रोध करती और कभी मुंह बनाती, अजब चाल चलती तथा आँखें संकुचाती उसे विलास कहते हैं ।

तद्यथाः—

स्खलितबहुलं पादन्यासे,
विलोकनमन्यतः,
स्थितिरविषय, वक्त्रा-
म्भोजं प्रयाति विकूणनम् ।
स्मितमपि मुहुर्व्यर्थः
क्रोधो वृथैव चमत्कृति-
र्दयितमभिगच्छन्त्या-
स्तन्व्या विलासरसोह्ययम् ॥१८॥

विलास रसका दृष्टान्तः—स्वामीका अनुकरण करती हुई बाला जब चलती है तो कभी पांव कहींसे कहीं रख

देती, कभी किसी ओर निहारती, कभी इधर बैठती कभी उधर बैठती, कभी मुख कमल सँकुचाती, कभी व्यर्थ बार २ हँसती, कभी व्यर्थ कोप करती और कभी अपना चमत्कार दिखाती है। बस, बालाके विलक्षण विलास ऐसे ही होते हैं।

सवाष्पगद्गदालापः
सस्मितापाङ्ग वीक्षितम्।
प्रेमदाक्षिण्यवृत्तिश्च,
तरुण्या हाव उच्यते ॥ १६ ॥

हंसीके मारे रुक २ कर बोलना, विकसित नेत्र कमलोंका कटाक्ष चलाना, हार्दिक प्रेम दरसाना तथा स्वामीके अनुकूल आचरण करना ही तरुणीका हाव होता है।

तद्यथाः-

प्राप्तेषु शृंगाररसाश्रयेषु
हावेषु प्रेमांकुरचिह्न भूतः।
उत्पद्यते यत्स्मित वीक्षितोक्त-
मुन्मीलितं बालतया स हावः ॥२०॥

हावका दृष्टान्तः-बाल स्वभावसे शृंगाररसका आश्रय हावका प्रसंग आता है। उसमें बाला कटाक्ष चलाती,

मन्द २ हंसती और मान करती है। तात्पर्य कि कामका अङ्कुर यहींसे आरम्भ होता है।

विसंष्ठुलावेशमयो
विकारो विविधः स्त्रियः।
तमामनन्ति विक्षेपं
मुनयः कपिलादयः ॥ २॥ ॥

अनवस्थित तथा आवेशमय जो बालाका विविध विकार प्रदर्शन है उसे कपिल आदि मुनियोंने विक्षेप कहा है

दृष्टान्तः-

धम्मिल्लं बद्धमक्त तिलकमसकलं
न्यस्तबृतं च धत्ते,
दृष्टावेकत्र कालाञ्जनमुरसि रण-
त्किंकिणीं रत्नकाञ्चीम्।
अंसोत्क्षिप्तार्द्ध हाराक्रमकरसकला
मात्रशेषाधरान्ता
कान्ताविक्षेपभावादपहरति मनः
यत्नरुद्धोरुवासाः ॥ २२ ॥

विपक्षके का दृष्टान्त—जूड़ा बँधा हुआ भी खुलासा या ढोला रहे, भालका तिलक भी बेढंगा हो, एक ही आंखमें कज्जल हो, वक्षःस्थलमें घुंघरू लटका लिया हो, गलेका हार बांहपर चला आया हो, अधरमें पानकी लालीके बदले सिर्फ सुपारीका रस ही शेष हो और खिसकता हुआ अञ्चल कभी इधर सवांरती हो कभी उधर खींचती हो ऐसो भ्रान्तिमयी भावोंसे भव्य भामिनी किसका मन नहीं हरती ?

वाच्यानां च पदार्थानां
ज्ञानेऽपि यदभाषणम्।
नायकेषु मृगाक्षीणां
विकृतं तत् प्रकीर्तितम्॥ २३॥

मृगाक्षी यदि जान-बूझकर अपने पतिके प्रति अवाच्य वाक्य कहे, तो उसे विकार कहा जाता है।

विकारका दृष्टान्त :—

कण्ठे क एष तव, वल्लभ नूपुरोऽयं,
तत्पादभूषणमयं वलयस्तदानीम्।
इत्यादि वाच्यमभिभाव्य वचो मृगाक्ष्या
ज्ञानेऽपि तद्विकृतमुत्सुकतां तनोति॥२४॥

हे वल्लभ ! तेरे कण्ठमें यह नपुर कैसा है ? यह वलय पादभूषण बना हुआ है ; मृगाक्षी यदि इस प्रकार विकृत वाक्य पतिके प्रति प्रयुक्त करे, तो वह विकार है । नायिकाका यह भाव उत्सुकता उत्पन्न करता है ।

मधुपानमदप्राय
स्तारुण्यातिशयोद्भवः ।
विकारो यो वरस्त्रीणां
तं वदन्ति मदं बुधाः ॥२५॥

अच्छी स्त्रियोंका जवानीके ज़ोरसे पैदा हुआ विकार, मधुपानसे पैदा हुए मदकी भांति होता है । ऐसा पण्डित लोग कहते हैं ।

आलापः स्मितकौमुदीसहचरो,
दृष्टिः प्रहर्षोल्लसा,
भ्रू नृर्त्याध्वरदीक्षिता,
चरणयान्यासः समे भंगुरः ।
वेशेषु क्षणिकस्पृहा,
मदविधावद्वैतवादाश्रय—
स्तन्व्या नैकविकारभू मधुमदप्रायो
मदः स्फूर्ज्जितः ॥ २६ ॥

युवतीका आलाप पूर्णचन्द्रके समान प्रसन्न कारक होता दृष्टि हर्षोत्फुल्ल होता है आँखें तो नाचती ही रहती हैं ाल भी निराली होती है सदा मदमस्त रहती है वेशभूषा क्षण स्पृहा रहती है और मनमें यही समझती है कि े समान संसारमें दूसरी कोई है ही नहीं।

दयितस्य कथारम्भे
साङ्गभङ्गविजृम्भणम्।
कर्णकण्डूयनं स्त्रीणां
मोट्टायितमुदीरितम् ॥२७॥

कान्तके कथारम्भमें युवती जहां अंगड़ाई जम्हुआई ती और कान खुजलाती, उसे मोट्टायित कहते हैं।

तस्याङ्घ्रिद्वितयं नमन्ति मुनयो
ऽसावेककः सर्ववि-
त्तं मृत्युञ्जयमामनन्तिविबुधाः
सोऽप्याप्यपाणिग्रहः।
इत्याकर्ण्य कथां हरस्य विजया
पार्श्वे विवाहात् पुरा

भंक्त्वाऽङ्गानि विजृंभितं, गिरिभुवो
मोट्टायितं पातु वः ॥२८॥

पार्वतीका मोट्टायित तुम लोगोंकी रक्षा करे। विवाह के पूर्व जिस प्रकार बन सके उस प्रकार शरीरका प्रसार करे।

केशस्तनादिग्रहणे
हर्षादप्रतिमे सुखे।
दुःखाविष्करणं तन्व्या
यत्तत्कुट्टमितं मतम् ॥२९॥

सुरतकालमें सुन्दरीके बाल और स्तन आदिके ग्रहण करनेपर उसे अपूर्व आनन्द तो मिलना ही है किन्तु फिर भी यदि वह वहानेसे दुःख दिखावे तो उसे कुट्टमित कहते हैं।

किं कान्त निर्दयतरं भुजकन्दलीभ्यां
द्वाभ्यां निपीडयसि मां, न सहिष्णुरस्मि।
वामभ्रुवामिति सुखेष्वपि दुःखभाजां
धन्यः श्रृणोति यदि कुट्टमिताक्षराणि ॥३०॥

प्राणनाथ! इतना निर्दय होकर दोनों भुजाओंसे क्यों पीड़ित कर रहे हो? मैं इतना सहने योग्य नहीं हूं। इस

प्रकार नवोढ़ाके सुखमें भी उसके मुखसे दुःखके प्रकाशक इन कुट्टमित अक्षरोंको जो युवक सुना करता है वह धन्य है।

मुक्ताफलं तरो कस्ये-
त्यादि यत् कृत्रिमं वचः।
वल्लभानां पुरः प्रोक्तं,
मौग्ध्यं वदत तद्‌बुधाः॥ ३१॥

हे नाथ! किस वृक्षका मुक्ताफल है? इत्यादि नवोढ़ाका यह अज्ञानता सूचक प्रश्न जहां होता है वहां मुग्धता कही जाती है।

तद्यथा :—

के द्रुमास्ते क्व वा ग्रामे
सन्ति केन प्ररोपिताः।
नाथ मत्कङ्कणे न्यस्तं
येषां मुक्ताफलं फलम्॥ ३२॥

हे नाथ! किस ग्राममें कहांपर किसके उगाए तथा जमाए हुए वे वृक्ष हैं, जिनके ये दोनों मुक्ताफल लाकर तुमने मेरे कंगनेमें जड़वा दिया। यह अत्यन्त मुग्धाका दृष्टान्त है।

नागच्छति प्रियतमे प्रहरार्धमात्र-
मुद्वेगजं विविधचेष्टितमङ्गनायाः ।
सख्याः पुरः श्वसनरोदनमात्मभाग्य-
निन्दादिकं कविवरास्तपनं वदन्ति ॥३

प्रियतमके आधीरात तक न आनेसे स्त्रीके उद्वेगसे उत्पन्न हुई इन चेष्टाओं, जैसे सखीके आगे सिसक सिसक कर रोना या अपने भाग्यकी निन्दा करना, आदिको कवि लोग तपन कहते हैं ।

इसका दृष्टान्त :—

नायाते प्रहरार्धमेव दयिते
भङ्क्त्वा नितम्बे मिथः
संसक्ताऽङ्गुलिजालमध्यमधुना
सख्यः कृतार्था इति ।
व्याहारः स्वपनं मुहुः पुनरिदं
गौर्यर्थनाभ्यर्चनं
तन्वङ्ग्यास्तपनं तनोति कृतिनः
प्रेमाणमुच्चैरपि ॥ ३४ ॥

अपने नायकके आधीराततक न आनेसे तन्वंगी नायिका एकान्तमें जाकर नितम्बोंको मसलती या पीटती है। अपनी सखीके हाथोंमें पंजा डालकर ऐंड़ती है। भूखी रहती है, सोती है फिर जागकर यही चेष्टा करती है एवं सखीसे कहती है कि स्वामी मिल जायँ तो तेराही मुख मीठा कराऊं। यह तपन चेष्टाका दृष्टान्त है।

भ्रूनेत्रादिक्रियाशाली
सुकुमारविधानतः।
हस्तपादाङ्गविन्यासस्तरुण्या
ललितं विदुः॥ ३५॥

जिस तरुणीकी भौं और नेत्रादि क्रियाएं सुकुमार विधिसे सम्पादित हैं और इसी प्रकार उसके हाथ-पाँव तथा अंगोंका विन्यास है, उसके उस चेष्टा या स्वरूपको 'ललित' कहते हैं।

स्कन्धाश्रितैकमणिकुण्डलमुन्नतैक-
भ्रूवल्लि साचिविनिवेशितदृष्टिपातम्
चेतो न कस्य ललितं हरति प्रियाया
हासो यतोंऽशुकनिरुद्धरदेन्दुकान्तः॥३६॥

उस प्रियाकी लालित्यचेष्टा किसका मन नहीं हरती? जिसके कन्धेतक लटकते हुए मणि कुण्डल शोभित हैं। भ्रूवल्ली उन्नत है। वह टेढ़ी निगाहसे देखती है। जिसका चन्द्रमाकी भाँति हास्य है एवं जिसका मुख वस्त्रसे ढँका हुआ है।

इति त्रयोदश परिच्छेद।



चतुर्दश परिच्छेद



परिणाहारोहाभ्यां
षरणावद्वादशाङ्गुलैर्गुह्यैः ।
शशवृषभाश्वाः पुरुषा
हरिणी वडवेभिका नार्यः ॥१॥

जिस स्त्री-पुरुषकी गुह्य इन्द्रियाँ छै, नौ और बारह अंगुल परिमाणकी चौड़ी और दीर्घ हैं, ऐसी स्त्री हरिणी, घोड़ी और हस्तिनी सञ्ज्ञावाली होती हैं एवं पुरुष शशक, वृषभ और अश्व संज्ञक होते हैं ।

सुवचनसमदन्ताः कान्तिमन्तः प्रहर्षा
अविरलकरशाखा वर्तुलास्यं वहन्तः ।
चरणजघनहस्ते कर्णदेशे च कार्श्यं
सुरभिरतजलाढ्या मानिनस्ते शशाः स्युः ॥२॥

चरण, कटि पश्चाद्भाग, हाथ और कर्ण प्रदेशमें दुर्बलता एवं मधुरभाषी सुन्दर तथा समान दन्तपंक्तिवाला, कान्ति

मान्, सर्वदा प्रसन्नचित्त रहनेवाला, गोल मुख मण्डल, घनी अंगुलियोंवाला और सुगन्धित वीर्यवाला तथा अभिमान करनेवाला शश जातीय नायक होता है ।

स्थौल्यं गलस्य ललितां गतिमावहन्त
आरक्तहस्तचरणं स्थिरपद्मलाक्षि ।
कूर्मोदरं मृदुगिरं च, सुपीवराङ्गा
मेदस्विनश्च सुभगा वृषभा भवेयुः ॥३॥

जिसका गला मोटा हो, गमन सुन्दर हो हथेली लाल हो, दृष्टि स्थिर हो, अङ्ग गौरवर्ण हो सुन्दर तोंद हो और जो भाग्यवान् हो वह वृषभ जातीय नायक होता है ।

दीर्घैः कृशैर्वदनकर्णशिरोभिरोष्ठैः
सान्द्रैः शिरोरुहचयैः कुटिलाङ्गजङ्घाः ।
दीर्घाङ्गुलीजलदघोषवोलोलनेत्रैः
पीनोरुशीघ्रगमनैः सुनखाः स्युरश्वाः ॥४॥

मुख कान शिर और ओष्ठ कुछ लम्बासा हो, बाल खूब घने हों, शरीर दुर्बल हो, अंगुलियां लम्बी २ हों, दृष्टिमें चपलासी चञ्चलता हो, जाँघ मोटी हो, शीघ्रगामी तथा सुन्दर नखवाला हो तो वह अश्व जातीय पुरुष होता है ।

ललितगमना तन्वी श्यामा
हिमद्युतिशीतला
विकटदशना मन्दालापा
सुसान्द्रशिरोरुहा।
समधिककफा स्वल्पाहारा
सुगूढशिरोस्थिका
सुरभिसुरताढ्या च
स्निग्धानना हरिणी भवेत् ॥ ५ ॥

सुन्दर चाल हो, देह पतली हो, श्यामवर्ण हो, और चन्द्रकिरणकी तरह अङ्ग शीतल हो, दांत विकट हो, वचन निन्दनीय हो, बाल अधिक घने हों, कफ प्रकृतिकी हो, आहार स्वल्प हो, शिरकी अस्थियां उठी हुई न हों। सुरत सम्बन्धी जल सुगन्धित हो और मुख जिसका चिकना चुपड़ा हो तो व हरिणी नायिका होती है।

पीनकठिनकुचभागं
वक्रास्थिग्रंथिगुल्फमुद्वहती।
विपुलजघनमुष्णाङ्गं
मृदुसुललितमांसलौ बाहू॥

स्वेदाम्बुकणोपचीता
गौराङ्गी पललगन्धिरतसलिला।
तुच्छोदरी समाङ्गी
तरुणी पीत्ताधिका वडवा ॥ ६ ॥

अश्व जातीय अथवा बड़वा नायिकाके स्तनयुग पुष्ट तथा कठिन होते हैं, घुटने कुछ टेढ़े होते हैं। जघन विशाल होते हैं। अङ्ग सदा ही कुछ गर्म रहता है। बाहें कोमल तथा मोटी होती तथा उनपर पसीनेकी बूंद उठती रहती है। उसका शरीर गोरा होता, सुरत सम्बन्धी रजमें मास की जैसी सुगन्धि होती, पेट छोटा होता, सभी अङ्ग बराबर होते और पित्त प्रकृतिकी होती है।

खर्वा स्थूला प्रकटदशना
कुन्तलैः स्थूलनीलै
रक्ता वातप्रकृतिरकृशै
र्हस्तपादैर्वराङ्गी।
शीतोष्णाङ्गी बहुतरवचा-
श्चञ्चलाऽनल्पमेदा

रोमाकीर्णं वहती करिणी
दानगन्धं वराङ्गम् ॥ ७ ॥

हस्तिनी नायिकाका कद छोटा किन्तु देह मोटी होती है, दांत प्रायः बड़े बड़े होते हैं, वर्ण लाल होता है, वात प्रकृतिकी होती है, शरीर सुन्दर होता है, शरीर कभी ठंढा और कभी गर्म रहता है, बहुत बोलनेवाली, चञ्चल होती तथा हाथीके मदके समान उसके रजमें गंध होता है ।

नरः संलक्षितो व्यक्त
मनेकैरश्वलक्षणैः ।
एकतो लिङ्गकोमल्या-
च्छशको जायते ध्रुवम् ॥८॥

मनुष्यमें अश्व जातीय अन्यान्य अनेक लक्षण क्यों न हों, किन्तु यदि साधनमें कोमलता हो तो उसे शशक जातीय ही कहना चाहिये ।

कच्च पादतलं तुच्छं
गुरुत्वं च कुचास्ययोः ।
यस्याः सा हरिणी ज्ञेया
याऽपोभीलक्षणैर्युता ॥९॥

बाहुमूल और पाँवका तलवा जिसका छोटा हो, स्तन और मुह जिसके बड़े २ हों, उसमें यदि और लक्षण हस्तिनाके हों तो भी उसे हरिणी ही कहना चाहिये।

हरिणी शशयोर्योगे
वडवा बृषयोस्तथाश्व हस्तिन्यो।
उभयोः समरतमुदितं
त्रितयं रतिशास्त्रतत्वज्ञैः ॥१०॥

हरिणी नायिका और शश नायक, बड़वा नायिका और वृष नायक तथा हस्तिनी नायिका और अश्व नायक इसका परस्पर समान रूपसे सम्भोग होता है, ऐसा रतिशास्त्रके तत्वज्ञोंका मत है।

हरिणी वृषयोर्वडवा
हययोर्द्वितयं तथोच्चरतमुदितम्।
नीचद्वयं च वडवा
शशयोर्वृषहस्तिन्योः ॥११॥

हरिणीका वृषसे बड़वाका अश्वसे उच्च रत होता है और बड़वाका शश नायकसे एवं वृष नायकका हस्तिनी नायिकासे नीचरत अर्थात् असन्तोष कारक रत होता है।

अत्युच्चमश्वमृग्योः,
शशकरिण्योश्च नीच रतम् ।
इति नवधा रतमुदितं
समसुरतंतत्र साध्यमतम् ॥१२॥

अश्व जातीय पुरुषका मृगी स्त्रीके साथ अत्युच्च रति होती है और शश जातीय पुरुषको हस्तिनीके साथ अति नीच रति होती है। इस प्रकार सुख साध्य रतिके नौ भेद हैं।

अन्तर्लिङ्गास्पर्शान्नीचे
कण्डूतिरप्रतीकारा ।
उच्चे मृदुगुह्यान्तः
संपीडा सव्यथं हृदयम् ॥१३॥

अत्युच्च रति और अति नीच रति दोनों सन्तोष कारक क्यों है, इस बातको बताते हैं कि अति नीच रतिमें गुह्य-स्थानके अन्तस्तल पर्यन्त साधनके न पहुंचनेसे कण्डूति अर्थात् खुजलाहट शान्त नहीं होती और अत्युच्च रतिमें साधन बड़ा होनेके कारण मृगाके अल्प परिमाण गुह्य प्रदेशमें अत्यन्त पीड़ा उत्पन्न करता है। इसी कारण वे हानिकारक हैं। इसलिये समान रतिमें ही सुख है।

मृदुमध्योत्तम शक्तय
इह सूक्ष्मा रक्तजाः क्रिमयः ।
स्मर सद्मसु कण्डूतिं
जनयन्ति यथाबलं स्त्रीणाम् ॥१४॥

स्त्रियोंके रक्तसे उत्पन्न सूक्ष्म कीट थोड़ा बहुत और अत्यधिक शक्तिके अनुसार स्त्रियोंके स्मरसदनमें कण्डूति अर्थात् खुजलाहट उत्पन्न करते हैं ।

कण्डूत्यपनयन पटोः
कान्ताच्युतिशम हेतुभूतस्य ।
प्राणेश्वरस्य दयिता
सहते न मुहूर्त्त विच्छेदम् ॥१५॥

स्त्री कण्डूतिको दूर करनेमें समर्थ स्वामीका वियोग क्षण भर भी सहन नहीं कर सकती, क्योंकि बिना कण्डूति निवृत्तिसे रजःस्खलन नहीं होता और बिना उसके सुख-सन्तोष नहीं मिलता ।

दैवेन यदि कदाचित्
कथमपि जायते तस्य विच्छेदः ।

सहसैव सा वराकी
यायादृशमीं मनोभवामवस्थाम् ।१६।

हठात् यदि कदाचित् स्वामीका वियोग हो जाता है तो बेचारी स्त्री झट प्राण त्याग करने पर प्रस्तुत हो जाती है ।

अभिलाषस्तथा चिन्ता-
ऽनुस्मृतिर्गुणकीर्तनम् ।
उद्वेगश्च विलापोऽथो-
न्मादो व्याधिस्तथाष्टमः॥१७॥
जडता मरणं चेति
दशावस्थाः प्रकीर्तिताः ।
प्रमदानां नराणां च
स्मरेषूद्भिन्न चेतसाम् ॥ १८ ॥

काममोहित स्त्री हो चाहे पुरुष, उनकी अवस्थाएं दश होती हैं जैसे—अभिलाषा १, चिन्ता २, अनुस्मृति या स्मरण ३, गुणकीर्तन ४, उद्वेग ५, विलाप ६, उन्माद ७, व्याधि ८, जड़ता ९ और मरण १० ।

इति चतुर्दश परिच्छेद ।

पञ्चदश परिच्छेद



प्रथममपररामा इङ्गितैर्लक्षणीयाः,
स्वयमथ सुहृदा वा यत्नसाध्या असाध्याः।
सकृदपि न च साध्या क्षेमकामैरसाध्या,
यदिह विपदसाध्या साधने दुर्निवाराः ॥१॥

परस्त्रीको पहले चेष्टाओंसे लक्षित करना चाहिये। क्योंकि एक तो पहले परस्त्रीगमन ही महापाप है दूसरी बात यह कि जो स्त्री कुलक्षणा होती है, उसका लक्षण पहले ज्ञात कर लेना चाहिये ; तब यदि उसको देखकर अन्तिम अवस्था आनेकी सम्भावना हो तो साध्य वा यत्न साध्य कर यत्न करना चाहिये, अन्यथा कभी नहीं क्योंकि कल्याण चाहने वालोंके लिये वह सर्वथा असाध्य है। स्वयं साध्य न हो तो मित्र द्वारा वा दूती द्वारा साध्य होती है और विपत्तिमें भी जो साध्य न हो, उसे सर्वथा असाध्य समझना चाहिये।

प्रकाशो बाहुमूलस्य
कक्षोदरकुचस्य च ।
बालानां चुम्बनालिङ्गौ
कबरीमोक्षसंयमौ ॥ २ ॥
स्वाङ्गावयव वस्त्राणां
निरन्तर विलोकनम् ।
अश्रुपातांगुलीमर्दौ
श्लेष्मोत्सर्गो मुहुर्मुहुः ॥ ३ ॥
कान्तस्य गुण सौभाग्य
संक्रीडागुणसम्पदाम् ।
संकीर्त्तने महोल्लासाः
सांगभंगं विजृम्भणम् ॥ ४ ॥
श्रुति सद्मांगुलिक्षेपः
सस्मिते वचनेक्षणे ।
एतान्ययत्नसाध्याना-
मिंगितानि समुन्नयेत् ॥ ५ ॥

सहज ही वशमें आनेवाली स्त्रीके इतने लक्षण होते हैं ।

वह बाहुमूलको प्रकट करती, पेट दिखाती, किसी न किसी बहाने स्तनमण्डलको दिखानेकी चेष्टा करती, यदि पासमें लड़का हो तो उसका चुम्बन तथा आलिङ्गन करती, बार २ बालोंको खोलती और बांधती, अपने अङ्ग-प्रत्यङ्ग तथा वस्त्रोंको देखती, आंसू बहाती, अंगुलियोंको मसलती, बार बार खाँस कर थूकती, प्रियके विषयमें पूर्ण प्रशंसा करती तथा दूसरेके मुंहसे सुननेपर सावधान हो जाती है। अंगड़ाईके साथ जम्हाई लेती हुई कानोंमें अंगुलियां डालती, हँसकर बोलती और ताकती है ।

सव्याधीर्ष्यालुकुत्यक्ति
धनहीनप्रवासिनाम् ।
स्त्रियो यात्रादिसंरक्ता-
स्ताश्च साध्याः प्रकीर्तिताः ॥६॥

व्याधिग्रस्त, ईर्षावाला, कुपात्र, निर्धन, दुष्ट, कुरूप, परदेशीकी स्त्री और यात्रा तथा उत्सवादिमें जानेवाली स्त्रियां साध्य होती हैं ।

ह्रीभयालङ्कृताः कान्ता
दुःखार्त्ता लोभवर्जिताः ।

साध्यालिंग विपर्यस्ताः
असाध्यास्ताः प्रकीर्त्तिता ॥७॥

जिस स्त्रीको लज्जा और भय रहता, जो दुःख पीड़ित रहती, जो निर्लोभ रहता और जो पूर्वोक्त साध्य लक्षणोंसे रहित होती उसे असाध्य कहते हैं।

रजको मालिनी धात्री
योगिनी प्रतिवेशिनी।
सखी गोपालिका चेटी
नापिती दूतिका मताः ॥ ८ ॥

धोबिन, मालिन, धाई, योगिन, पड़ोसिन, सखी, ग्वालिन, दासी और नाइन ये सब दूतीके योग्य हैं।

प्रगल्भा युवती दक्षा
परिज्ञातपरेङ्गिता।
दूती नियोज्यते कार्ये
वक्रभाषितभूषिता ॥ ९ ॥

युवती हो, साहसी हो, चतुर हो, अन्य जनकी चेष्टाओंको जानती हो एवं वक्रोक्तिको जानती हो वही दूती हो सकती है।

प्रतिपदमदनप्रदीपकै-
स्तैर्मृदुवचनैर्युवती तयाऽभिधेया ।
कुसुमशररुजा विकीर्ण-
धैर्या द्रुतमनुयास्यति यैः सुतेव दूतीम् ॥१०॥

जो युवती मदनके बाणप्रहारसे अधीर हो रही हो, उसे यदि दूती अनुक्षण मदनोद्दीपक मधुर वचन सुनाने लगे तो वह लड़कीकी तरह अनुगामिनी हो जाती है।

सप्रेमदानैर्मधुरैर्वचोभिः
संरक्षितव्याः सततं युवत्यः ।
अरक्षिता ह्यात्मपतित्रिवर्ग-
नाशं करोत्यन्यजनानुरागात् ॥११॥

युवक पतिको चाहिये वह अपनी युवती स्त्रीसे पूर्ण प्रेम करे; उसे मधुर वचनोंसे सन्तुष्ट रखे, उसकी आवश्यकताओंको यथाशक्ति पूरा करे और सदा रक्षा करे, अन्यथा पतिके दुर्व्यवहारसे विरक्त अरक्षिता स्त्री अन्य जनमें आसक्त होकर धर्म, अर्थ, काम इन त्रिवर्गोंका नाश करती है।

उद्यानतीर्थनटयुद्धसमुत्सवेषु
यात्रादिदेवकुलबन्धुनिकेतनेषु ।
क्षेत्रेष्वशिष्टयुवतीरतिसङ्गमेषु
नित्यं सता स्ववनिता परिरक्षणीया ॥१२॥

फुलवाड़ियों, तीर्थों, नाचोंमें, युद्धमें किसी महोत्सव या पार्टियोंमें अधिक दिनोंके हेतु भाइयोंके घर, खेतोंमें और अशिष्ट युवतियोंके संसर्गसे सज्जनोंको चाहिये कि सदा अपनी स्त्रीकी रक्षा करें ।

तारुण्यमोहमदनस्वजनोपरोधै-
र्धर्मार्थकामकुतुकोत्सुकसुप्रभावैः ।
दूत्याऽभिनन्दितविचित्ररताश्रयेण
नार्यो भवन्त्यगणितार्यकुलोपचाराः ॥१३॥

युवावस्थाके मदमें आकर अज्ञानवश, उत्कट कामवश और स्वजनके आग्रहसे धर्म, अर्थ और काम इनके बहाने, तथा दूतीके बहकावेमें पड़कर कुलाङ्गनाएं भी दुश्चरित्रा हो जाती हैं !

चेष्टां विचार्य निभृतं निजसुन्दरीणां
रूपोत्तमान्यनरलोचनगोचरेषु ।

यस्या न सन्ति सुतरां कथितेंगितानि
कान्तासु सैव गृहिणी बहुमाननीया ॥१४॥

सुन्दरी युवतीपर प्रायः युवकोंकी दृष्टि भी जाही पड़ती है, ऐसी दशामें अपनी स्त्रीके चरित्रपर ही सावधान रहना चाहिये। जिस स्त्रीमें पूर्वोक्त दुर्लक्षणों या चेष्टाओंका नाम तक नहीं है, स्त्रियोंमें वही गृहिणी पद पर सर्वथा प्रतिष्ठित करने योग्य है।

इति पञ्चदश परिच्छेद।



षोडश परिच्छेद



सेवनं योषितां कुर्याद्
बुद्ध्वा पथ्यक्रमं बुधः।
बालायोग्याभिरूढाना
मृतुयोगविभागतः ॥ १ ॥

कामशास्त्रके पण्डित ऋतुके भोग विभागके अनुसार बाला आदि स्त्रियोसे सम्भोगकी व्यवस्था करते हैं, क्योंकि वही पथ्य है।

बालेति गीयते नारी
यावच्छोडशवत्सरम्।
ततः परं च तरुणी सा
यावच्च त्रिंशतं भवेत् ॥ २ ॥
तदूर्ध्वमभिरूढास्या-
यावत् पञ्चाशतं पुनः।

वृद्धा ततः परं ज्ञेया
सुरतोत्सववर्जिता ॥ ३ ॥

सोलह वर्ष पर्यन्त बाला होती है; सोलहसे तीस वर्ष पर्यन्त तरुणी, तीससे पचास वर्ष पर्यन्त प्रौढ़ा और पचास से ऊपर वृद्धा होती है जो सुरतोत्सवके लिये निषिद्ध है।

निदाघशरदोर्बाला
पथ्या विषयिणां भवेत् ।
हेमन्ते शिशिरे योग्या,
प्रौढा वर्षावसन्तयोः ॥ ४ ॥

विषयी या कामी जनोंके लिये ग्रीष्म और शरत् कालमें बाला पथ्य है हेमन्त और शिशिरमें तरुणी तथा वर्षा और वसन्तमें प्रौढ़ा पथ्य है।

सततं सेव्यमानाऽपि
बाला वर्धयते बलम् ।
क्षयं (चयं ?) नयति योग्या स्त्री,
प्रौढा तु कुरुते जराम् ॥५॥

बालाका सेवन सदा ही बलवर्धक है, तरुणी बल क्षय कारक है और प्रौढ़ा वृद्धावस्थाको लाती है।

अलोमकाः सतिलका
नित्यं सेव्यास्तु योनयः ।
अलोमकत्वं कक्षेण,
मुखेन ज्ञायते तिलः ॥ ६ ॥

लोम हीन और तिल सम्पन्न वराङ्ग सदा सेवनीय है। कक्ष अर्थात् कांखमें बाल न होना चाहिये और मुखपर तिल होना चाहिये । *

आसीने लालयेद् बालां,
तरुणीं शयने तथा ।
उत्थिते चाभिरूढां तु,
लालनं त्रिविधं मतम् ॥ ७ ॥

बैठनेमें बालाका, शयन कालमें तरुणीका और उठनेमें प्रौढ़ाका लालन करना चाहिए। इस तरह तीन प्रकारके लालन या गहरा प्यार हैं।

मोहनं नारभेत्ताव-
द्यावन्नोत्कण्ठिता प्रिया ।

* टि० गुह्यान्ते तिलको यस्या रक्तकुंकुमसन्निभः ।
अथवा दक्षिणे भागे प्रशस्ता सा निगद्यते ॥

अन्यथा तत्सुखोच्छित्ति-
रशीतेऽर्ककरादिव ॥ ८ ॥

जबतक प्रिया उत्कण्ठिता न हो, तब तक मोहन प्रयोग आरम्भ न करना चाहिए। मोहन पदसे यहां सुरतका अभिप्राय है। अन्यथा सुखके बदले दुःख ही होता है। जैसे गर्मीमें कड़ी धूप प्रिय नहीं लगती।

नाभिहृत्कण्ठदेशेषु
दधत् श्वासं न यः क्रमात्।
कामोऽहं भावयेत् कामी
गायत्रीं सप्तधा जपेत्॥ ९ ॥

जो पुरुष नाभि, हृदय और कंठ प्रदेशमें श्वास धारण करके मैं काम हूं ऐसी भावना करे और गायत्री पढ़े तो स्त्रीको वशीभूत कर लेता है।

गायत्री यथा—ॐ नमो मनोभवाय विद्महे कन्दर्पाय धीमहि तन्नः कामः प्रचोदयात्॥ १० ॥

व्यायेन चुम्बनादीना-
मुच्छ्वासं पाययेत् प्रियाम्।

तेन सा वशमायाति
न तस्यास्तु स्वयं पिवेत्॥ ११॥

चुम्बनके छलसे अपनी सांस प्रियाको पिलानेसे वह पूर्ण वशमें आ जाती है, किन्तु स्वयं उसका पान न करे।

सीत्कारश्च हकारश्च
श्वसितश्च त्रपाक्षयम्।
प्रस्विन्नवदनं चैव
विकारोऽथ भगस्य च॥ १२॥
बुद्ध्वा चैतानि लिंगानि
प्रियायः सुतरां बुधः।
तया तुल्यसुखं चैत-
दात्मरागं समारभेत्॥ १३॥

सीत्कार अर्थात् जीभ तथा तालुके संयोगसे उच्चारित शब्द, हा हा करना, लम्बी सांस लेना, लज्जाका दूर होना, शरीरमें पसीना आना, वराङ्गमें स्फुरण और कंडूति आदि लक्षणोंको देखकर कामकला-कुशल व्यक्तियोंको सुरत समागम करे, जिसमें दोनोंको समान सुख प्राप्त हो।

सुन्दर्यामनिशं यस्यां
रमते चित्तमात्मनः ।
सैवेयं भावनीया स्या-
दात्मरागसमुद्भवः ॥ १४ ॥

जिस सुन्दरीमें दिन-रात स्वभावतः चित्त अनुरक्त हो या विशुद्ध प्रेम हो, उसीमें ऐसी भावना करनी चाहिये।

अत्राह महेश्वरः-

एवं संचोदिता नारी
नान्यमिच्छति मानवम् ।
क्लीवोऽपि हृदयं तस्याः
प्राप्नोत्येव न संशयः ॥ १५ ॥

इस प्रकार लालन-पालन की हुई स्त्री अन्य पुरुषकी इच्छा कभी नहीं करती है। पुरुषकी कौन बात, नपुंसक पतिसे भी सन्तुष्ट रह सकती है।

इति नरैर्विधिना परिसेविता
परमशर्म समेत्य नितम्बिनी ।

तृणवदुज्झितजीवितनिस्पृहा
त्यजति याम्यपुरेऽपि न वल्लभम् ॥१६॥

इस प्रकार सत्पुरुषोंसे सुसेवित सुन्दरी सच्चा सुख सम्प्राप्त कर जीवनको तृणकी तरह तुच्छ समझती हुई यम सदनमें भी उक्त सत्पतिको छोड़ना नहीं चाहती।

इति षोडश परिच्छेद ।



सप्तदश परिच्छेद



पादाग्रजङ्घोरुषु योनिनाभि-
कुक्षौ कुचे हस्ततले गले च।
ओष्ठे कपोले नयने श्रुतौ च
शीर्षे तथा सर्वशरीरदेशे ॥१॥

स्थानेषु चैतेषु तिथिक्रमेण
नितम्बिनीनां समुदेति कामः।
वामांगभागोपरि शुक्लपक्षे
कृष्णे च सव्यावयवे तथैव ॥२॥

पाँवका अग्रभाग, जंघा, ऊरु, नाभि, कुक्षि, कुचद्वय, हथेली, गला, ओठ, ललाट, नयन, कान, मस्तक एवं सर्वाङ्ग में तिथि क्रमसे कामका उदय होता है। शुक्लपक्षमें बाएं पाँवके अंगुष्ठसे कामका आरोहण होता है और कृष्णपक्षमें शिरसे नीचे तक क्रमशः अवरोहण होता है।

अंगुष्ठमूलात्प्रभृति क्रमेण
यावच्छिखामूलमुपैति कामः ।
कृष्णे तु पक्षे चरणाग्रदेशं
प्रयाति नित्यं शिरसस्तथैव ॥३॥

कृष्णपक्षमें अंगुष्ठ मूलसे क्रमशः केश पर्यन्त काम संप्राप्त होता है और उसी शुक्लपक्षमें शिरसे क्रमशः चरणके अग्रभाग तक काम उतर कर चला जाता है ।

अंगुष्ठमूलेषु अ, आ च जङ्घा-
युगे, इ ऊरावपि, ई च योनौ ।
नाभ्यां उ, ऊ कुचतटे, कुचे ऋ,
करे तथा ॠ, लृ च कण्ठदेशे ॥४॥
ॡ चाधरे, ए सततं कपोले,
नेत्रे च ऐ, कर्णयुगे तथा ओ ।
शिखाश्रये औ कथितो रतज्ञैः,
सर्वांगदेशे च सदैव अं अः ॥५॥
सर्वांगदेशे मदनस्य बीज-
मिष्टाक्षरं सेन्दु सबिन्दु शीर्षम् ।

बीजं शरच्चन्द्रकलावदातं
सञ्चोदयेत्सूर्यनिभं प्रदीप्तम् ॥६॥

अंगुष्ठ मूलोंमें अ, जंघाओंमें आ, ऊरुमें इ, बरांगमें ई, नाभीमें उ, कुक्षिमें ऊ, कुचमें ऋ, करमें ॠ, कण्ठमें ऌ, अधरमें ॡ, कपोलमें ए, नेत्रमें ऐ, कर्णयुगमें ओ, केशमें औ और सर्वाङ्ग प्रदेशमें अं अः। इस प्रकार शरत्कालिक चन्द्रकी तरह उज्ज्वल तथा सूर्यके समान प्रकाशमान प्रयुक्त काम बीजोंकी भावना करनी चाहिए।

विभावयेत्तद्दयिताशरीरे
ततो निरुन्मेषविलोचनायाः।
(नितान्तनिःस्यन्दितनोः प्रियायाः)
विहाय बाह्यान् विभवान् भवेयुः॥७॥
मु (स?) खे निलीनानि षडिन्द्रियाणि
(तृणानि सर्वाणि भवन्ति तन्व्याः ॥८॥

अपनी स्त्रीके शरीरमें उक्त मन्त्रोंकी भावना करनी चाहिए। उसके बाद एकदम निस्तब्ध-नेत्रा कामिनाके बाह्य विभव अर्थात् बाहरी रतिको छोड़ कर आन्तरिक रति

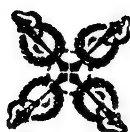
आरम्भ करनी चाहिए। ऐसा करनेसे स्त्री और पुरुष दोनोंकी परस्पर छहों इन्द्रियां तृप्त होती हैं।

तथा चात्र महेश्वरः—

इति चिन्तितमात्रेण
स्त्रीणां तृप्तिःप्रजायते।
विनाऽपि योनिलिङ्गाभ्यां
संसर्गेण वरानने ॥ ६ ॥

हे वरानने! इन कामबीजोंकी चिन्ता करनेसे ही अर्थात् स्त्री-पुरुषके संयोग बिना ही परस्पर सन्तोष हो जाता है।

इति सप्तदश परिच्छेद।



अष्टादश परिच्छेद

मुखं चतुर्विंशतिनाडिकानां
मदावहानां मदनातपत्रम् ।
नारीवराङ्गोदरमध्यवर्ति
प्रचोदयेत्त्र्यक्षरबीजयुक्तम् ॥१॥

स्त्रीके वरांगके मध्यमें संभोगेच्छा प्रकट करनेवाली चौबीस नाड़ियां हैं, उनका मुख या निर्गम स्थान मदनच्छत्र कहाता है। जो ऊपरका भाग है उसमें त्र्यक्षर बीज मन्त्र पाठके साथ अंगुलियोंका घर्षण करना चाहिये।

उच्चारितानां क्रमशः कलानां
द्वितीयकं पञ्चदशस्थमेकम् ।
विसर्गमध्यं प्रणवादिमन्त्र-
मुद्घातयेत्त्र्यक्षरनामधेयम् ॥२॥
॥ ॐ आः अं ॥

उच्चारित स्वरोंका द्वितीयाक्षर और दशमाक्षर अर्थात् मध्यमें विसर्ग और आदिमें प्रणव अर्थात् ओंकार इन तीन अक्षरोंका उच्चारण करते हुए अंगुलि प्रयोग करना चाहिये।

संप्राप्य बालां करशाखयैव
लिङ्गेन चात्मीयसमां समेत्य।
लिङ्गाङ्गुलिभ्यां तु तथाऽभिरूढ़ां
प्रचोदनीयं मदनातपत्रम् ॥३॥

बालाको अंगुलीरूप साधनसे अपना कर प्रयोग करना तथा प्रौढ़ाके प्रति साधन और अंगुली दोनोंका प्रयोग करना।

ॐ कामदेवाय इदम् मे हर्षाय हर्ष स्वाहा ॥

॥ क्षोभन (ण) मन्त्रः ॥

द्वे लोचने, द्वे वदने, तथैका
तुण्डे, स्थिता वै मुखचोद्यनाड्यः।
अंगुष्ठमूलाश्रितनाड़िका तु
तथा पदाङ्गुष्ठनखेन चोद्या ॥ ४ ॥

दो आँखें, दो नाड़ियाँ और दो मुख उसमें स्थित एक नाड़ी है, उसको पाँवके अंगुष्ठके नखसे परिचालन करना चाहिये।

कर्णोरुपार्श्वत्रिकमस्तकेषु
संचोदनीयाः करजेन नित्यम्।
तृप्तिर्न तासां तु विपर्ययेण
भवेत्कदापीति वदन्ति धीराः ॥५॥

कान, ऊरू, पार्श्व (पसली) त्रिक अर्थात पृष्ठास्थि या रीढ़का अन्तिम अंश ऊरूकी सन्धि और मस्तकमें नखाघात करना चाहिये। इसके विपरीतमें स्त्रीको तृप्ति नहीं होती, ऐसा सुरत-चतुरोंका कथन है।

वायव्यावृतवह्निमण्डलगतं
हान्तं स्वरैर्वेष्टितं
सिन्दूरारुणमिन्दुबिन्दुसहितं
बीजं त्रिलोक्याऽर्च्चितम्।
पान्थैरात्मनितम्बिनीखगमुखे
ध्येयं हिताकाङ्क्षिभिः

स्वप्नेनापि न ताः प्रयान्ति वशतां
तेनान्ययूनां सदा ॥६॥ हक्ष्यं ॥

प्रवासमें जानेवाले युवक यदि चाहें कि मेरी स्त्री अनुपस्थितिमें अधिक दिन बीत जानेपर भी अन्य पुरुषकी ओर दृष्टितक न डालें। स्वप्नमें भी भावना न करे तो इस "हं क्ष्यं" मन्त्रका प्रयोग करें। उसका ध्यान कैसा है। सो कहते हैं, वायव्य कोणमें वह्नि मण्डलमें संप्राप्त स्वरसे वेष्टित, सिन्दूरकी भांति लाल, नादविन्दुसे युक्त, त्रिलोक पूजित हकार बीजको अपनी स्त्रीके गुह्य प्रदेशमें अभिमन्त्रित करे।

प्रातःसूर्यमरीचिरेव बलकृत्
पिण्डो वराङ्गोदरे
दृष्टो नामविभूषितः सचपलो
बिन्द्विन्दुनादान्वितः।
ध्यातो भास्वरपद्मरागरुचिरः
सीमन्तिनोचिन्तितं
सप्ताहेन वशं नयत्यथ पुरं
गाम्यं प्रियादर्शने ॥ ७ ॥

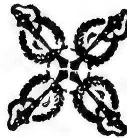
वराङ्गके मध्य 'ब्लं' बीज मन्त्रका. ध्यान करनेसे एक सप्ताहमें स्त्रीको वशीभूत करता है। वह मन्त्र कैसा सो कहते हैं। बकार उसमें बल कारक है, लकार पिण्ड और चन्द्र-बिन्दुसे अङ्कित या नाद विन्दुसे चिह्नित, प्रकाशमान कमलकी कान्ति जैसा मनोहर अर्थात् रक्तवर्ण और प्रातः कालिक सूर्य किरणके समान उक्त मन्त्रका ध्यान करके मन्त्र सिद्ध कर लेनेपर स्त्रीको भी यमपुरी ले जाता है। अर्थात् मृत्यु होनेपर भी प्रियाका मिलन होता है।

	व	द	
मन्त्रका रूप——	ब्लँ		॥ ७ ॥
	दे	त्त	

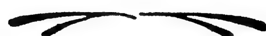
रेफस्तं सविसर्गमीश्वरयुतं
सान्तं पिशङ्गद्युति
विन्यस्तं मदनातपत्रशिखरे
स्त्रीणां परं द्रावकम्।
यस्यै कस्य वशात् पुमानशिथिल
श्रद्धाभियोगान्वितः
पिण्डाकृष्टिमशीघ्रमेव कुरुते
प्राप्तोपदेशः शुचिः ॥८॥ ह्रौंः॥

सानुस्वार रेफ-युक्त हकार, दीर्घ ईकार युक्त विसर्ग सहित पिशङ्ग (भूरा) वर्ण ह्रींः बीज मन्त्रको स्त्रीके मदनच्छत्र पर उपदेश-प्राप्त साधक पवित्रता एवं विश्वासके साथ पढ़े। यह मन्त्र परम द्रावक है। कुछ समय इसका प्रयोग करनेसे स्त्री देहका आकर्षण करता है।

इति अष्टादश परिच्छेद।



एकोनविंश परिच्छेद



सती चैवासतीसंज्ञा
सुभगा दुर्भगा तथा।
पुत्री दुहित्रिणी चेति
षडेता मदनाडिकाः ॥ १ ॥

सती, असती, सुभगा, दुर्भगा, पुत्री और दुहित्रिणी ये छे स्त्री जघनेन्द्रियस्थ मद नाड़ियाँ अर्थात् संभोगेच्छा कारिणी या अहंकारिणी नामकी हैं।

योनिमात्रेऽपि सन्त्येताः
कथिता मदनाड़िकाः।
सती वामेऽसती सव्ये,
द्वे वराङ्गत्वचि स्मृते ॥ २ ॥

योनि मात्रमें उक्त मद नाड़ियाँ रहती हैं। उनमें वाम भागस्थ सती और दक्षिण भागस्थ असती नाड़ी वराङ्गसे निकली हुई जानना चाहिये।

किञ्चिदभ्यन्तरे चैव
रन्ध्रे सव्यापसव्ययोः।
दुर्भगा सुभगा चैव
द्वे नाड्यौ समुदाहृते ॥ ३ ॥

बांए और दाहिनेके बीच छिद्रके थोड़े अन्तरपर सुभगा और दुर्भगा नामकी नाड़ी कहाती हैं।

सर्वतोभ्यन्तरे चैव
पार्श्वे खगमुखस्य वै।
वामे पुत्री समाख्याता,
दक्षिणेन दुहित्रिणी ॥ ४ ॥

गुह्य प्रदेशके सबसे अन्तस्तलके वाम भागमें पुत्री और दक्षिण भागमें दुहित्रिणी नाड़ी होती है।

सतीसंचोदनाच्चैव
सती रामा प्रकुप्यति।
असतीचोदनान्नारी
खिद्यते च सती सदा ॥ ५ ॥

सतीके सञ्चालनसे असती कुपित होती और असतीके सञ्चालनसे सती सदा सन्तुष्ट होती है ।

सतीसंचोदनादेव
सती हृष्यति निर्भरम् ।
असतीचोदनाच्चैवा-
सती तुष्यति नित्यशः ॥ ६ ॥

सती नाड़ीके अति सञ्चालनसे ही सती पूर्ण सन्तुष्ट होती और असतीके अति सञ्चालनसे ही असती सर्वथा सन्तुष्ट होती है ।

सुभगाचोदनान्नारी
सुभगा प्रियदर्श(शि)नी ।
भवेत् स्निग्धाननाङ्गी च
श्यामा पीनपयोधरा ॥ ७ ॥

सुभगाके सञ्चालनसे सुभगा प्रियदर्शिनी होती है स्निग्धाननाङ्गी अर्थात् चिकने अङ्ग वाली तथा कठिन कुच वाली होती है ।

दुर्भगाचोदनेनापि
वनिता दुर्भगा भवेत् ।

रुक्षा कृशा विवर्णाङ्गी
जरारोगनिपीड़िता ॥ ८ ॥

दुर्भगाके सञ्चालनसे स्त्री दुर्भगा होती है, इतना ही नहीं रूक्ष वर्ण, दुर्बल, विरंग और वृद्धावस्थाको प्राप्त होती है।

पुत्रीसंचोदनादेव
प्रिया पुत्रवती भवेत्।
दुहित्रीचोदनेनापि
दुहिता जायते ध्रुवम् ॥ ९ ॥

पुत्री नाड़ीके सञ्चालनसे स्त्री युवती होती है और दुहित्री नाड़ीके सञ्चालनसे स्त्रीको कन्या होती है।

उभयोश्चोदनात्सूते
क्लीबमेव न संशयः।
निपुणं चोदयन्नाड़ीं
यदीच्छेद्धितमात्मनः ॥ १० ॥

पुत्री और दुहित्री दोनों नाड़ीके सञ्चालनसे अवश्य नपुंसक सन्तान होती है। इसलिये जो अपना हित चाहे सो कौशलके साथ नाड़ी सञ्चालन करे।

मतान्तर कहते हैं :—

सती कुचेऽसती कक्षे,
सुभगौष्ठे च, दुर्भगा ।
त्रिके, तुण्डे स्थिता पुत्री,
नितम्बे तु दुहित्रिणी ॥ ११ ॥

इस मतसे नाड़ीका क्षोभण करनेमें प्रथम स्तन मर्दन करना तदनन्तर कक्षमें नखक्षत करना, तत्पश्चात् अधरपान करना, उसके बाद त्रिक अर्थात् रीढ़ और नितम्ब द्वय इन तीनोंका संवाहन और मुख-चुम्बन करना चाहिये ।

एवं संचोदिता नारी
नान्यमिच्छति मानवम् ।
क्लीबोऽपि हृदयं सर्वं
प्राप्नोत्येवं न संशयः ॥ १२ ॥

इस प्रकार संघटित स्त्री अन्य पुरुषकी इच्छा कभी नहीं करती, यहां तक कि नपुंसक पति भी उसके हृदयमें स्थान पाता है ।

इति एकोनविंश परिच्छेद ।

—०—

विंशति परिच्छेद



नखदशनपदेषु मन्दभावाः
प्रहरणकर्षणचुम्बने विरागाः।
अकुटिलमतयश्चरित्रवत्यो
मृदुरतयोऽपि च मध्यदेशनार्यः॥

मध्य देशकी स्त्रियाँ नखाघात और दन्ताघातको अधिक नहीं चाहतीं, प्रहार, आकर्षण तथा चुम्बन भी विशेषरूपसे पसन्द नहीं करतीं, स्वभाव सीधा सादा होता है। और रतिमें भी कोमलता चाहती हैं सुतरां सच्चरित्रा होती हैं।

---

* टि॰ मध्यदेश—"गंगायमुनयोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः॥"

गंगा और यमुना नदीके मध्य प्रान्तको मध्यदेश कहते हैं और प्रयागसे पश्चिम प्रान्तको भी मध्यदेश कहते हैं। वह सम्प्रति एलाहाबाद आगरा और दिल्ली नगर तथा उसके आस पासके प्रदेश हैं।

नखदशनपदे विरक्तचित्ताः
प्रहरणचुम्बरताश्च लाटनार्यः ।
तदुदितवनिताजनस्य चेष्टा
प्रभवति पश्चिमदेशसुन्दरीषु ॥२॥

लाट देशकी स्त्री भी नखाघात और दन्ताघातसे विरक्त रहती है, किंतु प्रहार और चुम्बनको चाहती है, इसी प्रकार और पश्चिम देशकी सुन्दरीकी भी चेष्टाएं जानना चाहिये ।

पशुकरणरते कृतानुरागाः
सुपरिश्लेषकचग्रहप्रसाध्याः ।
नखदशनपदे सतृष्णभावा
लघुसुरता अपि सिन्धुदेशनार्यः ॥

सिन्धु देशकी स्त्रियाँ पशु समान सुरतमें अनुराग रखती, दृढ़ आलिंगन, और केश ग्रहण भी पसन्द करतीं । नखक्षत और दन्तक्षत भी चाहतीं, किन्तु सुरत क्रीड़ा थोड़ी चाहती हैं ।

गिरिकुहरवनेषु तत्स्वभावाः,
कुरुमरुदेशकुरङ्गलोचनाश्च ।

विविधरतिरताः कलासु कल्पा-
श्चतुरतरा अपि सिंहले मृगाक्ष्यः।

कुरु और मरु देशकी मृगनयनी स्त्रियां पर्वत और व
को पसन्द करती हैं साथ ही सिंहल याने लंकाकी स्त्रिय
अनेक प्रकारकी रति कलाओंमें चतुर होती हैं।

वैदग्धवासाः शुचयो गुणाढ्या
भवन्ति काश्मीरनितम्बवत्यः।
आचारहीनाः कृतघातसाध्या
भवन्ति जालन्धरदेशरामाः ॥ ५ ॥

काश्मीरकी स्त्रियाँ विविध प्रकारकी सुगन्धित वस्तुअ
को पसन्द करती तथा विशेष विलासिनी होती हैं। पंजा
की स्त्रियां आचारहीन होती तथा सुरत कालि अने
आघातोंको चाहती हैं।

आलिङ्गने चित्ररतानुरक्ता
वेगान्विताः कृत्रिमलिङ्गसाध्याः।
चुम्बाभिलाषाः सततं युवत्यः
स्त्रीराज्यजाः कोशलदेशजाश्च ।६

स्त्री राज्य अर्थात् भूटान और कोशलदेश अर्थात् प्रांत-की स्त्रियाँ आलिंग और चित्ररतमें अनुरक्त तथा वेगवती होती हैं। कृत्रिम साधनको चाहती तथा चुम्बन भी सतत चाहती हैं।

प्रचण्डवेगाः कृतघातसङ्गाः
सदोन्मदा इन्द्रियपानलुब्धाः।
करांगुलीकृतिमलिङ्गसाध्याः
कर्णाटदेशे कथितास्तरुण्यः॥ ७॥

कर्णाट देशकी स्त्रियाँ प्रचण्डवेगवाली और आघातोंको चाहती, सदा ही उन्मत्त रहनेवाली इन्द्रियपानलोलुप होती हैं और अंगुलिव्यापार तथा कृत्रिम साधनको चाहती हैं।

सदा चतुःषष्ठिकलाप्रसक्ता
रतास्तथालिंगनचुम्बनेषु।
करांगुलिन्दोपविधिप्रसाध्या-
श्चण्डा महाराष्ट्रकुरङ्गनेत्राः॥ ८॥

महाराष्ट्रकी मृगनयनी सदा चौंसठों कलाओंके व्यापारमें आसक्त रहती हैं। आलिंगन और चुम्बन भी चाहती तथा अंगुलि-व्यापारको भी पसन्द करती तथा प्रचण्ड वेगवाली होती हैं।

केशग्रहालिङ्गनचुम्बनेषु
जिह्वाप्रवेशे च विमर्द्दने च ।
संभूषणे मर्द्दनताड़ने च
सदाऽनुरक्ता द्रविड़े रमण्यः ॥९॥

द्राविड़ देशकी स्त्रियां केशग्रहण, चुम्बन, परस्पर जिह्वा-व्यापार, विमर्दन, ताड़न तथा भूषण पहननेमें सदा अनुरक्त रहती हैं।

किमपि रसिकचित्तं चुम्बनालिङ्गनादा-
वधरमधुसमीहाऽत्यन्तलावण्यदेहाः ।
सुरभिसुरतभावास्तीर्थयात्राभिलाषा
मृदुलमधुरवाचो गौड़बङ्गाङ्गनाः स्युः १०

गौड़ और बंग देशकी स्त्रियां चुम्बन और आलिंगनमें कम भाग लेतीं, उनके अधर बहुत सुन्दर तथा शरीरमें लावण्य बहुत होता है। सुरतका भाव अच्छा होता, तीर्थयात्राकी उत्कट इच्छा रखतीं और मधुरभाषिणी होती हैं।

आघाते मर्द्दने वा नखदशनपदे
निःस्पृहाः क्षोभणे च,

नानाक्रीड़ाकलालंकृतिरतिमनसो
मन्दवेगोपरागाः ।
दृष्ट्वा दूरेऽपि यूनः सदपि मनसिजा-
वेशसाकाङ्क्षनेत्रा,
नेपाले कामरूपे सुमधुरवचना-
श्चीनदेशे च रामाः ।११।

नेपाल, कामरूप तथा चीनकी स्त्रियां आघात, मर्दन, नखक्षत, दन्तक्षत और क्षोभण या अति सञ्चालनमें निःस्पृह होती हैं, किन्तु अनेक प्रकारकी क्रीड़ाओंको पसन्द करती हैं। मन्दवेगमें अनुरक्त रहतीं। नवयुवकको दूरसे ही देखकर तुरत मदनातुर होतीं तथा साकांक्ष हो जाती हैं।

योषितां विषयसाम्यतः
प्रियं चुम्बनं प्रकृतिकृत्यमिष्यते ।
तत् चैकविषये प्रयुज्यतेऽ-
भीप्सितप्रकृतिसाम्यतस्तदा ॥१२॥

देश भेदसे तथा स्त्रियोंके अपने स्वभाव भेदसे चुम्बन आदि प्रिय होते हैं, इसलिये सुरतकालमें, जिसकी जैसी प्रकृति होती है अपना विलास करती हैं।

अन्यथा हि न सुखस्य साधनं
सर्वमेतदनपेक्षितं कृतम् ।
दुस्सहेन शिशिरेण निर्भरं
पीडिते व्यजमारुता इव ॥ १३ ॥

अन्यथा इसके विपरीत अर्थात् युवक युवतीके परस्पर प्रगाढ़ इच्छाके विरुद्ध ये सभी सुखके साधन, असह्य जाड़े-से पीड़ित व्यक्तिको पंखेकी हवाकी भाँति सर्वथा कष्टप्रद ही हैं।*

इति नागरसर्वस्वे देश विषय विभागो नाम
विंशतिः परिच्छेदः ।

---

* टि० इस दस्तकमें सिंहल अर्थात् लंकाकी तथा नेपालकी स्त्रियोंके स्वभावका तो वर्णन किया गया है, परन्तु गुर्जर या गुजरात की स्त्रियोंका वर्णन नहीं किया गया। परन्तु गुजरातकी स्त्रियोंका रति स्वभाव वर्णन सभी कामशास्त्रियोंने किया है तथा रति रहस्यमें—'लीलालया प्रेमनिधिः प्रियोक्तिः कलाकलापे चतुरा सुकेशी'। "मृदुंगयष्टिर्लघु भोगहेतुः सौख्यैकचित्ता भुवि गुर्जरी स्यात् ॥" पुनः अनंगरंगमें—'उपभोगरता सुलोचना लघु संभोगविधि प्रतोषिणी। शुभवेषधरा विचक्षणा कथिता सा खलु गुर्जरी बुधैः ॥" पुनः अन्यान्य

देशकी स्त्रियोंकी रतिप्रकृति यथा-'आन्ध्री प्रेमनिबन्धनैक निपुणा नित्यं महाराष्ट्रिका । सौराष्ट्री मृगलोचना सुवचना द्रव्यप्रिया गुर्जरी ॥' इति ॥ 'कर्णाट देशोद्भवानां नायिकानां योनौ संकीर्णता । गुर्जर देशोद्भवाना कामिनीनां अधरो मनोहरः ॥ काश्मीर देशोद्भवानां नारीणां कुचौ कठिनौ, मरु देशे चातुर्यबहु दक्षिणदेशोनार्यः सर्वगुण सम्पूर्णः पश्चिम दिशि नारीणां मालिन्यं, उत्तरदिशि नार्यः भोगलम्पटाः पूर्व दिशि चातुर्यमधिकामिति गुण वैशिष्ट्यमुक्तम् ॥

—:※※※:—

एकविंशति परिच्छेद



सुशक्तिवह्निप्रविदार्यमाण-
सद्वस्त्रहृद्यस्तिमिताभिरामम् ।
यत्तालुजिह्वाजनितं प्रशस्तं
शृङ्गारविद्भिः स्तनिताभिधानम् ॥ १॥

पूर्ण शक्ति लगाकर जठराग्निसे प्रेरित पूर्ण ऊर्ध्वश्वास से दूर किया हुआ जो वारीक वस्त्र उससे हृदय अर्थात् मनोहर जो तालु और जीभके संयोगसे उत्पन्न शब्द उसे शृंगार रसिकोंने "स्तनितं" कहा है।

हृष्यत्कपोतादिविहंगमानां
यथा रुतं कूजितमामनन्ति ।
आयासनिःश्वासनिरोधहृद्यं
मनीषिणस्तच्छ्वसितं वदन्ति ॥२॥

हर्षित कबूतर आदि पक्षियोंके जैसा शब्द करनेको

कूजित कहते हैं। और जिसमें अधिक आयाससे श्वास निरोध करना पड़े उसे श्वासित कहते हैं।

उच्छ्वासदन्तौष्ठजसीत्कृतं यत्
सीत्कारसंज्ञं विबुधास्तदाहुः।
श्लिष्टाधरोत्पादितपून्निदानं
पूत्कारमन्वर्थकनामधेयम् ॥ ३ ॥

दन्त और ओष्ठके संयोगसे निकला हुआ वायुप्रेरित शब्द अर्थात् बाहरसे मुखके भीतरकी ओर खिंची हुई श्वासको सीत्कार कहते हैं और अधरमें ओष्ठ मिलाकर किये गये पूत् शब्दको ठीक अनुकरण होनेसे पूत्कार कहते हैं।

हिक्शब्दवच्छ्वासनिरोधपूर्वं
यच्चुम्बनं हिक्कृदिति प्रसिद्धम्।
सन्निष्पतन्मौक्तिकशब्दरम्यं
तद्दूत्कृतं सर्वजना वदेयुः ॥ ४ ॥

हित् हिक् शब्दकी भांति अनुकरणात्मक शब्द (जिसमें श्वास निरोध होता है) करते हुए चुम्बनको हिक्कृत कहते हैं। मोती गिरनेके समान शब्द करनेसे दूत्कृत कहाता है।

इति एकविंश परिच्छेद।

द्वाविंश परिच्छेद



अव्यक्तरेखैर्नखरैः समस्तैः
रोमाञ्चकृत् सत्कणिताभिरामम् ।
स्तने कपोले च हनुप्रदेशे
प्रयोज्यतामुच्छुरितं प्रियायाः ॥१॥

स्तन कपोल और दाढ़ीमें अस्पष्ट नख रेखाओंसे युवती की देहमें जो रोमाञ्च होता है एवं उस समय वह भावावेशमें आकर क्वणित अर्थात् वीणाके झङ्कारोंकी तरह जो मनोहर शब्द करती हुई नखक्षत कराती है उसे उच्छुरित कहते हैं ।

वक्रोऽर्धचन्द्रः कथितो नखाङ्कः
सद्भिः प्रदिष्टः स्तनयोर्गले च ।
यदा तु तौ सम्पुटतां प्रपन्नौ
ब्रूते तदा मण्डलकं मुनीन्द्रः ॥ २ ॥

स्तन और गलेके नखक्षतको अर्धचन्द्र कहते हैं और वही नखक्षत यदि सम्पुट अर्थात् (डबल) हो तो उसे मुनीन्द्र वात्स्यायनने मण्डलक कहा है ।

किञ्चिच्च दीर्घां क्षतिमूरुपृष्ठ-
श्रोणीतटे व्याघ्रपदं लिखन्ति ।
दीर्घायतां तां प्रवदन्ति रेखां
स्थानं तदीयं यदनन्तरोक्तम् ॥ ३ ॥

जांघ पीठ तथा कमरका लम्बा नखक्षत व्याघ्रपद कहाता है और वही कुछ कुछ अन्तर पर अधिक लम्बा नखक्षत हो तो उसे क्षतिरेखा कहते हैं ।

शशप्लुतं पञ्च नखव्रणानि
सान्द्राणि पृष्ठस्तनगुल्फदेशे ।
स्तनस्य पृष्ठे विरलानि तानि
निगद्यतामुत्पलपत्रमेतत् ॥ ४ ॥

पीठ स्तन और घुटनेमें खूब घने पांच नखचिह्न शशप्लुत कहाता है अर्थात् खरगोशके उछलनेसे जैसे उसका चिन्ह होता है वैसा । एवं स्तनपर यदि विरल चिह्न हो तो उत्पलपत्र या कमलपत्र चिन्ह नखक्षत होता है ।

हित्वा कनिष्ठांगुलिजव्रणानि
चतुर्नखानां विरलीकृतानाम्।
कपोलदेशे स्तनमण्डले च
वदन्ति मायूरपदं मुनीन्द्राः॥ ५॥

कपोल-मण्डल पर कनिष्ठा अङ्गुलीको छोड़ शेष चार अंगुलियोंके विरल नख चिन्होंको मायूर पद (अर्थात् मोरकी चंगुलके चिन्ह) कहते हैं।

इति द्वाविंश परिच्छेद।

त्रयोविंश परिच्छेद

रागाभिलक्ष्यं स्फुटमोष्ठदेशे
तद्गूढकं दन्तपदं वदन्ति।
उच्छूनकं स्यादधरे च सव्ये
गण्डे दृढालिंगनस्ततदेव ॥ १ ॥

ओठमें स्पष्ट तथा लालिमा लिये जो चिह्न उसे गूढ़क दन्तक्षत कहते हैं। अधरमें और वाम कपोलमें दृढ़ालिङ्गनसे उत्पन्न चिह्नको उच्छूनक कहते हैं।

रदोष्टसंज(य)न्त्रणातः प्रवाल-
मणिः कपोले कृतिना प्रयोज्यः।
द्विदन्तसन्दंशयतोऽधरान्तं(न्तर्)
द्विबिन्दुको बिन्दुरिति प्रसिद्धः ॥२॥

दांत और ओष्टको दबा कर कपोलमें किया गया चिह्न प्रवालमणि कहाता है। अधरान्तमें दो दांतोंका चिह्न बिन्दु कहाता है।

रदैरनेकैर्मणिबिन्द माला (लें?)
गले कपोले हृदये लिखन्ती(न्ति?) ।
तद्गण्डकाख्यं विषमैश्च कूटै-
र्वृत्त(त्तं?) स्तने नागरका वदन्ति॥३॥

गलेमें कपोलमें हृदयमें अनेक दांतोंसे चिह्न बनानेपर विन्दु गण्डक नामक दन्तक्षत होता है।

घनाः सुदीर्घा रदनाङ्कराजयो
विभिन्नसद्विभ्रमलोहितान्तराः ।
विमण्डना एव कृताः पयोधरे
लिखन्ति यत्नेन वरा वराचितम् ॥४॥

घन, खूब लम्बा और अनेक प्रकारके लाल दन्तक्षतकी पंक्तियां यदि यत्नसे उठायी जायं तो वराह चर्वित (सूअरके दन्त) चिह्नकी तरह होता है।

इति त्रयोविंश परिच्छेद ।



चर्तुविंश परिच्छेद

०—:०:—०

आलिङ्गन भेद ।

प्रियं मृगाक्षी सरलांगयष्टि-
निर्वेष्टयन्ती लतिकेव शालम् ।
विचुम्बनार्थं नमयेत्तदोयम्
मुखं लतावेष्टितकं तदाहुः ॥ १ ॥

कृशाङ्गी—मृगाक्षी अपने प्रियसे वृक्षमें लताकी भांति लिपटती हुई यदि अपने स्वामीका मुख-चुम्बन करे तो लता-वेष्टित आलिङ्गन होता है ।

आक्रम्य पादमबला चरणेन पत्यु-
रूरुं तथाऽपरपदेन समञ्चयन्ती ।
तत्पृष्ठसंगतभुजाऽन्यतरेण दोष्णा
तं संमुखं सरभसं स्फुटमुन्नयन्ती ॥२॥

किञ्चिच्च खिन्नरुदितेच्छति चुम्बनार्त्ता
प्राणेश्वरं यदिह वृक्षमिवाधिरोढुम्।
वृक्षाधिरूढमुपगूहनमेतदुक्त-
याश्लेषयुग्ममुदितं स्थितकान्तमेत्य ॥३॥

स्त्री यदि स्वामीका एक चरणपर दूसरे चरणका आक्रमण करे और दोनों बाहोंसे पतिको अच्छी तरह आलिङ्गन करके चुम्बन करे तो उसे सम्मुख आलिङ्गन कहते हैं। और यदि स्त्री चुम्बनके लिये अधिक अधीर होकर वृक्षपर चढ़नेकी तरह यदि व्यापार करे तो वृक्षाधिरूढ़ नामक आलिंगन होता है। उठते हुए पतिको आलिंगन करे तो उपगूहन होता है।

संस्पर्शपूर्वमबलापरिरम्भणं यत्
तत् स्पृष्टकं मुनिजनैः कथितं पुराणैः।
कुड्याश्रयेषु परिपीड़नमंगनायाः
कुर्यात् पतिर्यदिह पीडितमेतदाहुः ॥४॥

सम्यक् स्पर्श पूर्वक स्त्रीका आलिंगन करनेसे स्पृष्टक होता है और स्वामी यदि दीवालके सहारे स्त्रीको दबावे तो पीड़ित नामक आलिंगन होता है।

तल्पे वितन्वदवगूहनकेलिमुच्चै-
र्यन्निस्तरंगमिथुनं घटयेत रागात् ।
रागातिरक्तपरिवर्धितगौरवेण
तत्कीर्त्तितं मुनिवरैस्तिलतण्डुलाख्यम्॥

शय्यापर परस्पर गाढ़ालिंगन करके यदि निस्तरङ्ग अर्थात् एकदम निश्चल हो जाय तो तिल-तण्डुल नामक आलिंगन होता है।

अंके स्थिताऽथ शयने मृगशावकाक्षी
गात्रेऽपि यस्य विशती वनिताऽनुरागात् ।
गाढ़ोपगूहनवशेन निरन्तरं यत्
संश्लेषमाहुरिह येन जलाभिधानम्॥६॥

स्त्री यदि स्वामीकी गोदमें एकदम प्रविष्ट होकर निरन्तर दृढ़ आलिंगन करे तो दुग्ध जल अथवा क्षीर-नीर नामक आलिङ्गन होता है।. तात्पर्य यह कि दूधमें जैसे जल अलग नहीं ज्ञात होता उसी तरह स्त्री भी स्वामीकी गोदमें लीन हो जाय।

आक्रम्य यत्र जघनं जघनस्थलेन
संलंघयेत् प्रियतमा पतिमानतांगी ।

व्यक्तीभवन्नखपदा गलितोत्तरीया
तज्ज्ञैस्तदेव कथितं जघनोपगूहम् ॥७॥

प्रियतमा पतिको अपनी जंघासे आक्रमण करके सम्यक् रूपसे लंघन करे और उस समय यदि उसका वस्त्र ऊपरसे हट जाय और वह झुकी रहे तो जघनोपगूहन आलिङ्गन होता है ।

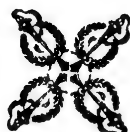
दध्याद् उरःस्थितभरं कुचयुग्ममुच्चै-
स्तन्व्यास्तदा प्रकथयन्ति कुचोपगूढम् ।
ऊरूपगूढमपि कीर्तितमंगनोर्वोः
पीडां यदोरुयुगलेन करोति कान्तः ॥८॥

कुचद्वयको भली भाँति ग्रहण करके जो आलिङ्गन होता है उसे कुचोपगूढ़ कहते हैं और साथ ही जंघाओंके निपीड़नसे जो आलिङ्गन होता है उसे ऊरूप गूढ़ कहते हैं ।

वक्त्रे मुखं नयनयोर्नयनैर्नियुज्य
क्रीड़ासुखानि तरसोन्मनसः प्रियायाः ।
हन्याल्ललाटफलकेन ललाटमध्यं
लालाटिकं तदुपगूहनमामनन्ति ॥ ९ ॥

प्रियाके मुख पर मुख रखके नयनसे नयनको मिलाके यदि ललाटमें ललाटका संघर्षण करे तो लालाटिक आलिङ्गन होता है ।

इति चतुर्विंशपरिच्छेद ।



पंचविंश परिच्छेद

—:⌣⌣⌣:—

चुम्बन भेद।

संचोदनार्थं मदनाड़िकानां
निपीड्य वक्षःस्तननाभिमीषत्।
यच्चुम्ब्यते नागरकैर्मुनीन्द्रा
निपीड़ितं चुम्बनमेतदाहुः ॥ १ ॥

मदन मन्दिरस्थ मद नामक नाड़ीको सञ्चालनके समय वक्षःस्थल और नाभीका निपीड़न कर नागरिक जन जो चुम्बन करते हैं उसे मुनीन्द्रने निपीड़ित चुम्बन कहा है।

भ्रान्तेन वक्त्रेण ललाटदन्त-
च्छदेषु तद्भ्रामितनामधेयम्।
उन्नामितोष्ठेन मुखेन नेत्रे
गण्डे तथोन्नामितकं प्रसिद्धम् ॥२॥

पति अपने शिरको घुमाते हुए पत्नीके ललाट और अध रमें यदि चुम्बन करे तो भ्रामित चुम्बन होता है और यदि शिर उठा २ के नेत्र और कपोलमें चुम्बन करे तो उन्नामित चुम्बन होता है।

नाभौ कपोले स्फुरिताधरेण
पयोधरे वा स्फुरितं प्रदिष्टम् ।
तथोदितं हृज्जघनोरुदेशे
श्लिष्टाधरौष्ठेन च संहतोष्ठम् ॥३॥

नाभि कपोल और स्तन, इनमें फड़फड़ाते हुए अधरसे चुम्बन करने पर स्फुरित चुम्बन होता है। अधर और ओष्ठ मिलाके तथा अलग करके हृदय जङ्घा तथा ऊरूमें चुम्बन करनेसे संहतोष्ठ चुम्बन होता है।

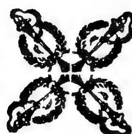
वक्रीकृतास्येन गले कपोले
कुचे च तद्वैकृतकं तदाऽऽहुः ।
सम्यङ्नतीकृत्य कपोलयुग्मं
सर्वाङ्गदेशे नतगण्डमेतत् ॥४॥

मुखको तिर्छा करके गलेमें कपोल और कुचमें चुम्बन करनेसे वैकृतक चुम्बन होता है। भली भाँति मुखको झुका करके कपोल मण्डल तथा सर्वाङ्गमें चुम्बन करनेसे नतगण्ड चुम्बन होता है।

एतानि निःशब्दविचुम्बनानि
मया यथास्थानमुदीरितानि ।
अथाभिधास्ये मधुरस्वनानि
मुखाधिवासानि विचुम्बनानि ॥५॥

इतान मैंने निःशब्द चुम्बनका स्थान कहा । अब मधुर शब्दयुक्त मुखके भीतरके सशब्द चुम्बन कहते हैं । निश्शब्द चम्बनके सात भेद हैं ।

इति पञ्चविंशति परिच्छेद ।



षड्विंश परिच्छेद

(जिह्वा प्रवेश)

सूक्ष्मीकृताग्रा रसना मुखान्तः
प्रवेशिता तां प्रवदन्ति सूचीम् ॥
वितन्यमाना प्रतता मता सा,
प्रकम्पमाना यदि वा करी स्यात् ॥१॥

जिह्वाको सूचीके आकार करके स्त्रीके मुखमें प्रविष्ट करनेसे सूची चुम्बन होता है। उसी जिह्वाको फैलाकर चुम्बन करनेसे प्रतता होती तथा इधर उधर चलायमान करनेसे वाकली होती है।

इति षड्विंश परिच्छेद।

—:—

सप्तविंश परिच्छेद



चूषण भेद ।

जिह्वाग्रमात्रस्य विचूषणं य-
त्तदुच्यतामोष्ठविमृष्टसंज्ञम् ॥
विचूष्यते शीघ्रतरं यदेत-
त्तच्चूषणं चुम्बितकं वदन्ति ॥१॥

जिह्वाग्र भाग मात्रसे चूसने पर ओष्ठ विमृष्ट नामक चूषण होता है और उसीको शीघ्र २ चलायमान करनेसे चुम्बितक होता है।

यदत्र दृष्ट्वाऽधरचूषणं परै-
र्मनीषिभिः कीर्तितमार्द्रचुम्बितम् ॥
परस्परं स्त्रीपुरुषौ विचूषतो
वदन्ति तत्संपुटकं विलासिनः ॥२॥

दूसरे कामशास्त्रीके पण्डितोंने अधरमें दन्ताघातके चुम्बनको आर्द्र चुम्बिन कहा है। और परस्पर स्त्री पुरुषके चुम्बनको संपुटक कहा है।

इति सप्तविंशति परिच्छेद ।

अष्टाविंश परिच्छेद

उत्तान करण ।

वामोरुसंस्थापितदक्षिणोरु-

नारी यदा स्वस्तिकमाह धीरः ॥२

जब नारी वाम ऊरू पर दहिन ऊरू स्थापित करे तो उसे स्वस्तिक कहते हैं ।

यदोरुमूलोपरि योषिदूरू

वदन्ति माण्डूकमिदं मुनिन्द्राः ॥ (२॥)

पुरुषकी जंघाके मूलपर जब स्त्रीका उरू रहे तो उसको मुनीन्द्र माण्डूक अर्थात् मेढ़कका आसन कहते हैं ।

कौर्मं यदोत्तानरतौ प्रयत्ना-

दुभौ भवेतां सरलीकृताङ्गौ ॥

पादौ स्थितावात्महनुप्रदेशे

नार्या यदा तद्धनुपादसंज्ञम् ॥३॥

स्त्री पुरुष दोनों जब अपने अङ्ग प्रत्यङ्गको सरल तथा समान करके संयुक्त हो जाय और पुरुष अपने पाँवको स्त्रीके कपोल पर रख दे तो कूर्मासन होता है ❋

आबद्धपर्यङ्कपदप्रियायाः
कण्ठं पतिर्बन्धुरयेद्भुजाभ्याम्।
तज्जानुजङ्घान्तरनिःसृताभ्यां
पद्मासनं तत् करणं प्रदिष्टम् ॥४॥

अङ्कमें स्थित वाम जङ्घाके ऊपर दक्षिण जङ्घा दक्षिण जंघाके उपर वाम जंघाको दृढ़ता पूर्वक रखे तो पद्मासन होता है। उत्तान नायिका दाहिना पाँव वाएं उरूके मूलमें रखे और वायां पाँव दहिने जंघाके मूलमें तो पद्मासन होता है।

टि० ❋ भुजया भुजमाननमाननता जंघामभि जंघामसौ रमते। विन्यस्य नरो यदि कौर्ममिदम्।' कान्ता कुचाग्रान्त निविष्टपादः तस्याः पदद्वन्द कृतांसभागः। करौ गृहीत्वा स्वकरद्वयेन यमेत यतद्धन कूर्मबन्धः॥ इति अनंगरंगे स्व वामपादं निज दक्षिणोराव दक्षिणा-रावपि दक्षपादम्। न्यस्याब्जगं तद्रमते गृहीत्वा प्रियश्च पद्मासन मुक्त मेतत्॥ इति रत्न प्रदीपिकायाम्। पञ्चसायके—पद्मासनं संपरिकल्प्य भर्ता क्रोडोप विष्टां युवतीं रमेत। अन्यान्य कंठार्पित बाहु बन्धात् पद्मासनाख्यं प्रवदन्ति सन्तः॥" अनेन पद्मिनीं रमयेत्।

पर्यंकमेकेन पदा निबद्धं
तदर्धपद्मासनमुच्यते तु ॥५॥

स्त्री एक ही पांव यदि एक जंघाके मूलमें रखे और दूसरा पांव सीधा रखे तो अर्ध पद्मासन होता है।

यदाऽङ्गना पादयुगं निदध्यात्
प्रियोरसि स्यादिह पिण्डिताख्यम्।
आरोप्यते तत्र यदैकपादं
तदा भवेत्पिण्डितमर्धपूर्वम् ॥६॥

जब नायिका अपने दोनों चरण नायकके वक्षःस्थल पर रखे तो पिण्डित करण होता है।

जब एक ही चरण वक्षःस्थल पर रखे तो अर्ध पिण्डित करण होता है।

संस्थापयेदूरुयुगं मृगाक्षी
पुंस्कन्धयोर्जृम्भितमुच्यते तत्॥
विन्यस्यते तत्र यदोरुरेको
नार्या तदा वेणुविदारणं स्यात् ॥७॥

मृगाक्षी जब पुरुषके स्कन्ध (कन्धे) पर अपनी दोनों जंघाओंको रखे तो जृम्भित करण होता है। स्त्री यदि एक

ही चरण पुरुषके कन्धेपर रखे तो वेणु विदारित करण होता है।

स्त्रियः स्वपार्श्वद्वितयार्पितोरो-
रिन्द्राण्यपि स्यात्प्रियजानुयोगात् ॥

पुरुषके प्रार्श्व अर्थात् बगलमें यदि स्त्री अपनी दोनों जंघाओंको अर्पित करे और पुरुष भी उसके बगलमें अपनी जंघाओंको अर्पित कर दे तो इन्द्राणी नामक करण होता है। यह अभ्यास साध्य है।

एका (स्कंधा ?) श्रितं कुञ्चितमेकजानु
प्रसारितं चैकपदं तरुण्याः
यूना समापीडितकण्ठदेशं
संवेशनं सूच्यभिधानमग्र्यम् ॥८॥

पुरुषका यदि एक चरण सीधा हुआ हो और एक संकुचित हो तथा स्त्रीका कण्ठ पुरुष अच्छी तरह पकड़ ले तो ऐसे संवेशन या सुरतको सूची सुरत कहते हैं और यह श्रेष्ठ है।

आरोपितं पादयुगेन चोर्वो-
र्नार्या यदा नागरकं प्रशस्तम् ॥

निपीडयेदूरुयुगेन मध्ये
कान्तस्तदा ग्राम्यमुदीरितं तत् ॥९॥

स्त्रीके उरु मध्यमें पुरुषका दोनों पांव रखकर सञ्चालन करनेसे नागरक करण होता है। दोनों जंघाओं द्वारा मध्यमें निपीड़न या सञ्चालन करनेसे ग्राम्य करण होता है।

पादौ स्थितौ वल्लभनाभिदेशे
नार्या तदा कार्कटनामधेयम् ॥
वस्तौ कटीचोदनदोलितौ तौ
तदोच्यते प्रेङ्खणमग्रधीभिः ॥१०॥

पुरुषके नाभि प्रदेशमें यदि स्त्रीका दोनों चरण रहे तो कार्कट केंकड़े जैसा करण होता है। नायकके कटि सञ्चालनसे यदि दोनों पांव हिलता रहे तो प्रेङ्खण-करण होता है। करण पदसे सर्वत्र आसन समझना चाहिये।

आश्लिष्य वामेन भुजेन कान्तः
पयोधरे सव्यकरं विदध्यात् ।

टि० नागरक वन्धे नार्या ऊरूयुगं पुरुष कटितो वहिर्याति। उत्तानितायाः स्मरमन्दिरे यः स्थितस्तदूरूद्वय मुद्गृहीत्वा संस्थाप्य वाह्यं कटितो रमेत कान्तस्तदास्यात्किल नागराख्यः ॥

नार्या नृजङ्घायुगसंयतांघ्रे-
बुधैस्तदा मार्कटकं तदुक्तम् ॥११॥

पुरुषकी दोनों जंघाओंपर स्त्रीका चरण रहे और पुरुष बायीं बांहसे स्त्रीका आलिंगन करे और दाहिने हाथ स्तनपर रखे तो मार्कटक करण होता है।

दधाति रामोरुयुगं कराभ्यां
कान्तस्तदोद्भुग्नकमुच्यते तत् ॥
नीतं शिरश्चैकपदं तरुण्याः
प्रसारितं चापरमायताख्यम् ॥१२॥

स्वामी दोनों करोंसे रमणीका उरु युग धारण करे तो उद्भुग्नक करण होता है। तरुणीका एक पैर शिर पर ले ले और दूसरा भरण सीधा कर रखे तो आयत करण होता है।

कण्ठं निजं बन्धुरयन्भुजाभ्यां
स्वजानुजङ्घान्तरनिःसृताभ्याम्।
नितम्बिनी यत्र वदन्ति धीरा-
स्तन्नागपाशं करणप्रधानम् ॥१३

जिस सुरतमें नितम्बिनी अपने जानु और जंघाओंके मध्यसे अपनी भुजाओंको निकाल कर अपने कण्ठको पकड़े, वह नागपाश करण होता है ।

इति अष्टाविंशति परिच्छेद।



एकोनत्रिंश परिच्छेद



द्वयोस्तिरश्चोः सरलीकृताङ्गयो-
र्विघट्टनं संपुटकं तदुक्तम् ॥
यदोरुयुग्मेन निपीडयेत्पतिं
प्रिया तदा पीडितकं तदाहुः ॥१॥

स्त्री पुरुष यदि दोनों तिरछे हों तथा अङ्गको सीधा करके कटि-सञ्चालन करें तो संपुटक करण होता है। और प्रिया जब उरू युगसे निपीड़न करे तो पीड़ितक करण होता है।

यस्मिन् भर्तुः सरलिततनोः
कुञ्चितत्र्यस्त्रनार्याः
गाढाश्लेषो यदिह
मुनयो मुद्रकं तद्वदन्ति ॥
पृष्ठे पश्चाद्दयितघटना-
कुञ्चितत्र्यस्त्रगात्रं

सोमन्तिन्या विमुखशयनं
यत्परावृत्तकं तत् ॥२॥

संकुचित वरांग-युक्ता नारीके संग सरली भूत पुरुषके गाढ़ालिंगनको मुनियोंने मुद्गक करण कहा है। और स्त्री यदि विमुख होकर सो जाय तो तब यदि स्वामीके कटि-सञ्चालनसे स्त्रीकी देह सिकुड़ती रहे तो परावृतक करण होता

जङ्घाद्वयेनैव नरस्य जङ्घे
स्त्री वेष्टयेद्वेष्टितकं प्रसिद्धम् ।
भगेन लिङ्गस्य निपीडनेतु
वदन्ति तद्वाडवकं मुनीन्द्राः ॥३॥

स्त्री ही यदि पुरुषकी एक जंघाको अपनो दोनों जंघाओंसे वेष्टित करे तो वेष्टितक होता है, और स्त्री यदि अपने वराङ्गसे साधनका निपीड़न करे तो वाड़वक करण होता है ।

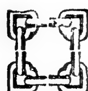
आसोनकान्तत्रिकपादयुग्मं
नितम्बवत्या यदि युग्मपादम् ।
पार्श्वे स्थितानां मृगलोचनानां
गीतानि तज्ज्ञैः करणानि सप्त ॥४॥

पार्श्व (बगल) में सोयी हुई स्त्रीका यदि चरण सीधा रहे और दूसरा सिकुड़ा हुआ रहे तब पुरुष सम्मुख होकर अपना पांव उसके सीधे चरणके नोचे फैल

कुड़े हुए पांवसे दृढ़ता पूर्वक आलिंगन तथा चुम्बन करे तो युग्मपद नामक करण (आसन) होता है।

त्रिकको तिरछा करके स्थित मृग नयनीके गीत सात हैं और तिर्यक्करण सात हैं।

इति ऊनत्रिंशति परिच्छेद।



त्रिंश परिच्छेद

o . o

मयूरकाद्याश्रितया तरुण्या
कान्तस्य योगोऽथ विपर्ययेण ।
विधायकं कल्पज (क?) शास्त्रविद्भि-
स्त्वासीनसंज्ञं करणं तदुक्तम् ॥१॥

मायूरक करण अर्थात् मयूराकार युक्त स्पृष्ट आसनमें आसीन कान्तका योग यदि विपर्ययसे हो तो उसे काम शास्त्रियोंने आसीन नामक करण अर्थात् मयूरासनमें स्थित होकर सुरत करनेका नाम आसीन करण है ।

मञ्जीरकान्तिच्छरितत्रिकस्य
पर्यङ्कबन्धस्थिरभर्तुरङ्गम् ।
स्थिताङ्गनाबाहुविषक्तकण्ठं
प्रशस्तमेतल्ललितं विधिज्ञैः ॥२॥

नूपुरकी कान्तिसे प्रतिबिम्बित स्वामीका अंग हो और वह पर्यंक बन्धकी तरह स्थिर हो और स्त्री अपनी बांहसे पुरुषका कण्ठ संलग्न रखे तो काम कुशल व्यक्ति उसे सुन्दर तथा प्रशंसित पर्यङ्कबन्ध कहते हैं ।

इति द्वात्रिंश परिच्छेद ।

एकत्रिंश परिच्छेद



अनुच्चैः पूर्वाङ्गं,

निजचरणयोः पाणियुगलं,

तथा यष्टेः पश्चा-

त्स्थितपतिकराश्लिष्टमुदरम्।

नितम्बिन्या धीरैः

पशुकरणमेतन्निगदितं

प्रशस्तं यत्सिन्धौ

मरुकुरुजनैश्चापि सुतराम् ॥१॥

नायिकाको अधोमुखी करके अर्थात् पशुके समान नीचे मुंह करके तथा अपने दोनों हाथोंसे उसका वक्षःस्थल पकड़े अर्थात् बकरेकी भांति रमण करे। इसको पशुबन्ध कहते हैं।

तनौ तल्पालीने

निजकरधृतं पार्ष्णियुगलं

नितम्बिन्याः पृष्ठं
नतमतिशयोत्क्षिप्तजघनम्।
समुन्नीतं पश्चात्
परमदयितेनोरुयुगलं
स्मृतं व्याघ्रस्कन्दं
करणमशतं दुष्करमतम्॥ २॥

शय्याशायिनी प्रिया अपने आप दोनों पांव ऊपर उठाये रहे, पीठ, कटि पश्चाद्भाग अधिक उपर ऊठाये रहे और प्रिय दोनों हाथोंसे भी वक्षस्थल ग्रहण करे तो व्याघ्र स्कन्द करण अर्थात् शेर जैसे रमण करता है, वैसा आसन होता है यह बहुत कठिन है इसमें स्त्रीको क्लेश बहुत होता है। पर, अभ्यास साध्य है।

इति एकत्रिंश परिच्छेद।

---

*

द्वात्रिंश परिच्छेद

तन्व्या नरेणोद्धृतपादमेकं
चान्यं पृथिव्यां हरिविक्रमाख्यम् ।
कान्तत्रिकारोपितपादमेकं
तदोच्यते व्यापरनामधेयम् ॥ १ ॥

स्त्रीका एक चरण पुरुष उठावे और दूसरा चरण थ्वीपर सीधा रहे तो उसे हरिविक्रम नामक करण कहते । कान्तके त्रिक अर्थात् रीढका अन्तिम अंश पुरुषका तम्ब द्वयको त्रिक कहते हैं, उसपर यदि स्त्रीका चरण वा रहे तो व्यायत नामक करण होता है ।

नृहस्तयोः पादतले धृते तु
विषक्तकण्ठ्याऽर्पितनामधेयम् ॥
धृतं निजे वक्षसि वल्लभेन
स्त्रीपादयुग्मं प्रवदन्ति दोलाम् ॥२॥

पुरुषके दोनों हाथोंसे स्त्रीका कण्ठ संलग्न रहे और स्त्री । पुरुषका पांव पकड़े रहे तो अर्पित नामक करण होता

है । स्वामी यदि अपने वक्षःस्थलपर स्त्रीके चरण रखे तो दोला नामक करण होता है ।

नार्या यदा बाहुविषक्तकण्ठ्या
नितान्तसंयोजितपादयुग्मम् ।
स्थितस्य कुड्याश्रितनायकस्य
त्र्यस्रे तदा विद्धि विलम्बिताख्यम् ३

स्त्री अपनी भुजाओंसे पुरुषको गलेमें लगा ले और दोनों चरण भी अच्छी तरह संयुक्त कर ले और नायक दीवालके सहारे खड़ा हो जाय । तो विलम्बित करण होता है ।

नृकूर्प्परद्वन्द्वविलम्बिजानुं
नितम्बिनीं बाहुविषक्तकण्ठीम् ।
निवेष्टयेद्बाहुयुगेन मध्ये
स्थितः पतिः कूर्परजानुसंज्ञम् ॥४॥

मध्यमें स्थित पति अपने दोनों कुहनी तक स्त्रीकी जंघा आने दे और स्त्री पुरुषके गलेमें लिपट जाय और पुरुष भी स्त्रीको अपनी भुजाओंसे लिपटा ले तो कूर्पर जानु नामक करण होता है ।*

इति द्वात्रिंशः परिच्छेद ।

०—०

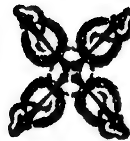
* टि० करणानि आसनानि संवेशनानि बन्धाः लयाः स्मरयन्त्र विधयो इति व्यवहृतानि। अर्थात् करण, आसन, बन्ध, संवेशन और लय सब आसन शब्दके ही समानार्थक हैं। नायिकाकी अंगस्थितिः—उत्तान, करवट, तिरछा, उपविष्ट बंध आसीन करण, ऊर्ध्व बंध, व्यानत बंध; अर्थात् खूब झुक कर किया गया बंध पशुकरण अर्थात् पशुके समान रमण करना—ये पांच प्रकारके होते हैं। [सब मिला करे ८४ बंध होते हैं; जो प्रसिद्ध ही हैं।] विस्तार होनेके भयसे अधिक नहीं कहा गया। आरोह और अवरोह अर्थात् दीर्घता पुरुषके साधनमें और गंभीरता स्त्रीके वरांगमें इन परिमाणोंसे उच्च अथवा नीच रति होती है। "उत्ताने च पुरुषस्य पादयोः प्रसारणे स्वजस्य पूर्णः प्रवेशः अर्धोपवेशने च न्यून इति। नीच रते आद्य उच्च रते चापरो विधिः प्रयोज्यः। सम रति संपादनाय उक्त बंधेषु अधोमुखं धेनुकं च नीचरते। मार्कटकं नागबंधश्च अति नीच रते कौर्मं परम नीच रते, एक पदं उच्च रते, अवलम्बितं अत्युच्च रते च प्रयोज्यम्। एवं अन्यत्राप्यूह्यम्॥

पूर्वोक्तोत्तानादि पंच भेदेषु नायिकानां प्रायः उत्तान रतमेव आनन्दप्रदं जायते। यतः तत्र ताभिः कमल पीडनं पूर्वांग पीडनं च सम्यगनुभूयते। पार्श्वबन्धेषु नितम्ब भारेण स्मरमन्दिरस्य गाढ़त्वात् स्मरमन्दिर पार्श्वयोः साधनेन सुष्ठु संघर्षणात् कोप्यानन्दातिशयः जायते, अतः शंखिनी हस्तिनी विषयकाः प्राय इमे। उपविष्ट बंधेषु सुरत समये आलिंगनादि बाह्यरतेषु सौकर्यं लभ्यते। स्थित

बंधाः क्लिष्टत्वात् रोगोत्पादकत्वाच्च नात्याद्रियन्ते । व्यानत बंधास्तु प्राय उत्तान बंध समाना अपितेषु स्त्रीकटि संचालन सौकर्य क्रमशा-वरोहादि गुणत्वात् प्रबुद्धध्वजानां प्रियतरा भवन्ति । पुरुष शैथिल्ये तु पुरुषायितं प्रयुज्यते । एभ्यो विलक्षणानि चित्ररतानितेषु स्तनान्तर रतं कक्षारतं, जानुरतं पादतलमध्य रतं मुष्टिरतं, "भगे निक्षिप्य यो जिह्वां यो विलोलं चुम्बति प्रियः । तथैव रमणस्यापि नारी लिंगं प्रकर्षति ।" स्मर दीपिकायां मुक्तं द्विविधं "गेमेहुष" इति पाश्चात्य-देशे प्रसिद्धं मुखरतं । निन्द्यामपि क्वचित्प्रवृत्तं पायुरतम् । क्वचिद्देशे यथा स्त्री राज्ये बहुभिः कान्त रेका स्त्री रमते भृशम् । कर्णाटे युवती-मिश्च बह्वीभीरमते युवा । वाडवकं मांध्रीषु; पशुकरणं सैंधवी मारभ्यासु ॥ 'दर्शनेन रतिं कृत्वा स्त्रियाः स्पर्शनमाचरेत् । स्पर्शेन द्रवमुत्पाद्य शनैः सभोगमाचरेत् ॥ आश्लेषं प्रथमं कुर्याद्द्वितीयं चुम्बनं तथा । तृतीयं च नखघातश्च दन्ताघातश्चतुर्थकम् । पंचमं लोपणं प्रोक्तं ॥

टि०—षष्ठं प्रहरणं तथा । सप्तमं कण्ठ शब्दश्च वण्ाख्यं चाष्टमं-रतम् ॥" अस्मिन् विषये इमे अपि विशेषा बोध्याः—यत् अन्न रसादिषड्धातु १ रस रूपः सप्तमो धातुः वीर्यं पुरुषाण्डयोः जन्यते, तच्च मैथुनेन लिंगस्य नाड़िकया बहिर्निस्सरति । स्त्री वंक्षणयो रस्त-भगि स्प्यण्डाशयः ततो रजस उद्भवः यन्मासि मासि बहिर्निर्गच्छति । सुरताय पुरुषाणां ध्वजोत्थान मयोक्षितं, स्त्रीणान्तु अतथा विधित्वेपि ध्वजप्रवेशे एव तासां मन्द वेगानामपि सुरताभिलाषो जायते । सुरते आनन्द स्थानं पुरुषाणां ध्वजाग्रएव, स्त्रीणान्तु गर्भाशय मुखं, यत्र

ध्वजाग्र संस्पर्श मात्रेण तेषां तासांच अवर्णनीय आनन्दातिशयः स्फुरति तदुक्तं रति कल्लोलिन्यां—"उद्भूर्भे शय्या वदनान्तिकस्थं चिंचाप्रसून प्रतिमं भगान्तः। तद्ब्रह्म सौख्यास्पद माहुरार्याः स्पर्शात्परं श्रावक-मंगनानाम ॥" चिञ्चा प्रसून "इमली"



त्रि-त्रिंश परिच्छेद



यदंगुलीनां प्रविधाय कुञ्चनं
चतसृणामेव करोति मस्तके।
अनल्पतात्कारनिनादि ताड़नं
स्मृतं विदग्धैरिह शब्दकर्तनम् ॥१॥

चारों ही अंगुलियोंको सिकुड़ा कर स्त्रीके मस्तकपर पुरुष थोड़ा २ टात् टात् करके चिल्लाए और सुरतासन लगाये रहे तो उसे शब्दकर्तन कहते हैं।

आबद्धमुष्ट्या यदि मुष्टिसंज्ञं
श्रोणीतटे पृष्ठतले विधेयम्।
गण्डे पदांगुष्टतलेन हन्या-
त्तदा बुधा विद्धकमामनन्ति ॥ २ ॥

कटि तटमें, पृष्ठतलमें मुक्केके प्रहार करनेसे मुष्टिसंज्ञक ताड़न होता है और गण्डस्थलमें पैरके अंगूठेसे ताड़न हो तो विद्धक होता है।

इति त्रयस्त्रिंश परिच्छेद।

चतुस्त्रिंश परिच्छेद

आदाय मुष्ट्या परिमर्दनं य-
त्तदुक्तमादीपितनामधेयम् ।
स्पृष्ट्वा यदा हस्ततलेन विद्धं
तदोच्यते स्पृष्टकमग्रधीभिः ॥ १ ॥

ग्रहण करके मुष्टिसे परिमर्दनको आदापित कहते है। स्पर्श करके हस्ततलसे मर्दन करनेपर स्पृष्टक होता है।

आकम्पमानेन करेण यच्च
मनीषिभिः कम्पितकं तदुक्तम् ।
इतस्ततो यत्र निपीड़मात्रं
मतं मुनीन्द्रेण समाक्रमाख्यम् ॥२॥

कंपाते हुए हाथोंसे मर्दन करनेपर कम्पित होता और इधर उधर निपीड़न मात्रसे समाक्रम नामक मर्दन होता है।

इति चतुस्त्रिंशः परिच्छेद।

०—०

पञ्चत्रिंश परिच्छेद

य: सर्वगात्रेषु दृढं करेण
ग्रहस्तदा तं वद बद्धमुष्टिम् ।
संवेष्ट्य यत्रांगुलिकां कचेन
वदन्ति तद्वेष्टितकं मुनीन्द्राः ॥१॥

जो पुरुष समस्त शरीरमें अच्छी तरह हस्त व्यापार करे उसे बद्ध-मुष्टि कहते हैं। जिस सुरतमें केश ग्रहण करके अंगुलि प्रवेश होता है उसे मुनीन्द्रोंने वेष्टित कहा है।

संग्रथ्य वामांगुलिकाग्रहश्च
स्मृतं कृतग्रन्थिकनामधेयम् ।
कण्ठे स्तनेऽङ्गुष्ठकतर्जनीभ्यां
तदा समाकृष्टिमुदाहरन्ति ॥ २ ॥

अंगुलियोंमें अंगुलियोंको गूंथ कर ग्रहण करनेको कृत-ग्रन्थि कहते हैं। कण्ठ और स्तनमें अंगूठे और तर्जनोसे ग्रहण करनेको तथा खींचनेको आकृष्टि कहते हैं।

इति पञ्चत्रिंश परिच्छेद ।

षट्त्रिंश परिच्छेद



प्रवेश्यते तर्जनिका वराङ्गे
प्रवेशनं तत्करणं वदन्ति ।
सा मध्यमापृष्ठगता यदा स्यात्
विदुर्विदग्धाः कनकाभिधानम् ॥१॥

वरांगमें तर्जनीका प्रवेश करनेसे प्रवेशन करण होता है। जब मध्यमा अंगुलीको उसमें संयुक्त करके प्रवेश कराया जाय तो कनक नामक करण होता है।

तयोर्द्वयोः पृष्ठविपर्ययेण
वदन्ति धीरा विकनं तदेव ।
ततो तु ते द्वे कथिता पताका,
तिस्रः सहानामिकया त्रिशूलः ॥
श्लिष्टा यदा ताः शनिभोगमाहुः ॥२॥

उन दोनों तर्जनी और मध्यमा पृष्ठ विपर्यय करके प्रवेश करानेसे कामशास्त्री पण्डितोंने उसे विकन कहा है।

इति षट्त्रिंश परिच्छेद ।

सप्तत्रिंश परिच्छेद

इति सुरतमनेकभेदभिन्नं
स्फुटमुदितं परिहृत्य फल्गुवाक्यम्।
त्रिविधमृगदृशां स्वरूपवेदि
मृदुखरमध्यमकर्म योक्तुमेतत् ॥१॥

इस प्रकार सुरतके अनेक भेद स्पष्टतापूर्वक कहे गये और व्यर्थ बातें छोड़ दी गयीं। तीन प्रकार अर्थात् मृदु-कोमल खर तीक्ष्ण और मध्य अर्थात् न कोमल न तीक्ष्ण और बाला मध्या तथा प्रौढ़ा इन तीन स्त्री भेदोंसे प्रयोग करना चाहिये। इसी तरह करण परिपाटी सोलह हैं।

हर्तुं हृदयसर्वस्वं
यदीच्छेद्भर्तु रङ्गना।
तदा विदग्धकामाना-
मित्याचरितमारभेत् ॥ २ ॥

स्त्री यदि अपने हृदय-सर्वस्व स्वामीका मन हरण करना चाहे तो स्त्री चातुर्यके इच्छुक पुरुषकी इच्छानुसार आचरण करे।

कौशलं धूपितं धौतं
वस्त्रमग्राम्यमण्डनम् ।
दधानाऽऽपीडसद्वेषं,
वक्ति भूयः प्रियान्तिके—॥ ३ ॥
(दधाना, पीतसद्धूपवतिर्भूयात् प्रियान्तिके?)

स्नानके बाद भींगे हुए बालोंको सुगन्धित धूपसे सूखा कर ले अग्राम्य-मण्डन अर्थात् देहाती शृंगारको न करके नगरमें प्रचलित प्रणालियोंसे अपनेको सुसज्जित तथा सुभूषित करके खूब साफ साड़ी पहन कर स्वामीके पास आवे

ससाध्वसं च सस्नेहं
सव्रीडं सहसं तथा ।
ईषद्दृश्यतनुर्नारी
वसेत्कान्तं निरन्तरम् ॥ ४ ॥

जरा जरा अंग-प्रत्यंगको दिखाती हुई कभी छिपाती हुई, कुछ डरती हुई, कुछ लजाती हुई, कुछ मुस्कुराती हुई स्वामीके निकट स्त्री आवे। अथवा इन चेष्टाओंको दिखावे।

आकर्षति पुनस्तस्मिन्
रतानीकरते प्रिये ।
जनयेदङ्गसंकोचं
क्षणं साक्षाद्भयादिव ॥ ५ ॥

सुरत युद्धमें जब स्वामी स्त्रीका हाथ पकड़ कर खींचे तब एकाएक डरकर कुछ अंग संकोच करे ।

प्रकान्तो सुरते पश्चात्
क्रमाविर्भूतमन्मथा ।
निःशङ्कमर्पयेद्गात्र-
मतिस्नेहादिव प्रिये ॥ ६ ॥
यद्यत्समोहते द्रष्टुं
हन्तुं वा लिखितुं वपुः ।
तत्तदापसरेच्छीघ्रं
सोद्वेगं, ढौकनीयं च ॥ ७ ॥

सुरत-समरके समारम्भमें क्रमशः आविर्भूत कामा अर्थात—मदन परवशा नारी जब अपने अंगोंको समर्पण कर दे तब स्वामी जिन २ अंगोंको देखना चाहें नखक्षत तथा दन्तक्षत करना चाहें उन अंगोंको पहले झट हटा ले फिर उद्वेगके साथ फिर समर्पण कर दे ।

कुर्यात्कूजितमामर्दे,
दंशे सव्यथहुंकृतिम्।
नखक्षतेषु सीत्कार-
माघाते स्तनितं स्फुटम् ॥ ८ ॥

मर्दन होनेपर शब्द करे, दन्ताघात करनेपर व्यथाके साथ हुंकार करे और नखक्षत फिर जानेपर तथा स्तन और गण्डस्थलमें आघात होनेपर सीत्कार करे।

प्रस्विन्नवदना श्रान्ता
मन्दहाकारनादिनी।
आयासश्वासरोमाञ्चं
मुञ्चेत्तद्रागवृद्धये ॥ ९ ॥

पसीनेसे तर-बतर होकर परिशान्त होकर, मन्द मन्द कराहती हुई और श्वास प्रश्वास खींचे साथ ही रोमाञ्च भी हों ये सब सुरत कालिक रागवर्धनके लिये करे।

मा मां निपीडयात्यर्थं
न समर्थोऽस्मि निर्दय।
इत्येवं गद्गदाव्यक्तं
प्रियं ब्रूयान्नितम्बिनी ॥ १० ॥

हे निर्दय मुझको इतना मत सताओ। इतने सहनेके लायक मैं नहीं हूं। इस प्रकार गद् गद् वचन अर्थात् अस्पष्टाक्षर बोले ।

वामत्वमनुबन्धं च
प्रौढत्वमसमर्थता ।
कान्ताकूतं स्फुटं ज्ञात्वा
सुरतेषु प्रदर्शयेत् ॥ ११ ॥

स्वामीका छल-कपट स्पष्टता पूर्वक जानके सुरत समय में उनको भी अपना कौशल दिखाना चाहिये । वे कौन सो कहते हैं । प्रतिकूलता, अनुराग, प्रौढ़ता और असमर्थता अर्थात् मानमें इनको दिखाना चाहिये ।

धीरताविनयोच्छेद-
मश्लीलमसमञ्जसम् ।
वृद्धिं याते रतावेगे
व्यवहारं समारभेत् ॥ १२ ॥

स्त्रीको सुरतके आवेग आरम्भ होनेपर तथा आवेग बढ़ने पर धीरता और विनयका भंग अश्लीलता आदिक व्यवहार आरम्भ करना चाहिये ।

शिथिलाङ्गी निरुत्साहा
सन्निमीलितलोचना।
प्र(नि?)वृत्ते मोहने तिष्ठेत्
स्वेदबिन्दु कणाचिता ॥ १३ ॥

जब आनन्दमय हो जाये, जब मुग्ध हो जाय तब अंग-को शिथिल (बेखबर) कर दे, आलस्य पूर्ण हो जाय आंखें मूंद ले और ऐसी अवस्था हो जाय कि सर्वांगमें पसीना चलने लगे।

नितम्बाच्छादितं शीघ्रं
वैलक्ष्यं ललितं स्मृ(स्मि?)तम्।
दृष्टिं खेदालसां कुर्या-
द्व्यक्तकेशविभूषणा ॥ १४ ॥

सुरत सम्भोगके पश्चात् दूसरा न कोई कुछ समझ देख ले इस तात्पर्यसे झट नितम्ब को वस्त्रसे ढक ले, मधुर मुसकान हों परिश्रमसे अलसाती आंखें हों और बालोंके भूषण निकल आये हों। तात्पर्य कि सूरतानन्तरके जो लक्षण हों वे सब दीख पड़ते हों।

वात्स्यायनादिरचितं विशरीरशास्त्रं
यद्दृश्यते मृगदृशां मृदु निमित्तम्।

सीमन्तिनीपुरुषयोरुभयोरिदं तु,
स्त्रीसेवनोत्कठिनता नियता हि लोके ॥१५॥

यह कामशास्त्र स्त्री और पुरुष दोनोंके लाभार्थ वात्स्यायन द्वारा बनाया गया और उसी वात्स्यायन मुनिकृत कामसूत्रके आधारपर अन्यान्य कामशास्त्रियोंने मृगनयनियोंके कोमल भाव सूचित किये हैं। क्योंकि संसारमें स्त्री सेवनका सच्चा सुख प्राप्त करना भी कठिन काम है।

तत्कुट्टिनीमतमुदीक्ष्य वराङ्गनानां
कान्ते विधेयमबलाचरितं प्रदिष्टम् ।
स्त्रीसौख्यलिङ्गमवधारयतां नराणां
चोक्तं स्वरागजननं सुतरामिहैव ॥ १६ ॥

इस कारण वरांगनाओंके व्यवहार सम्बन्धी कुट्टिनीमत नामक पुस्तकोंका अवलोकन करके स्वामीके प्रति स्त्रीका कैसा बर्ताव होना चाहिये वह और अबलाका चरित भी दिखाया। अतः स्त्री सम्बन्धी सौख्य (शौक) के लक्षणोंको जानने वालोंके लिये यहाँ ही उनका अच्छी तरह वर्णन कर दिया गया।

इति सप्तत्रिंश परिच्छेद ।

—:—

अष्टाविंश परिच्छेद



सुताथ बद्धचिन्ताना-
मपुत्राणां मनोभुवाम् ।
हिताय करुणासिन्धुः
कथयामि सुतोदयम् ॥ १ ॥

पुत्रोत्पत्तिके लिये चिन्तित अपुत्र पुरुषोंके हितार्थ करुणा-वश पुत्रोत्पत्तिका उपाय हम कहते हैं ।

रजःस्नानदिने दत्वा
भिक्षुसंघातभोजनम् ।
शक्तितो दक्षिणां दत्वा
प्रार्थयेद्वरमोप्सितम् ॥ २ ॥

रजोदर्शनके दिन स्नान करके भिक्षुओंको अच्छी तरह भोजन कराना चाहिये और यथाशक्ति दक्षिणा भी देनी चाहिये । साथ ही अभीष्ट वर मांगना चाहिये ।

तदौषधं पिवेत्कान्ता
तारापूजापुरःसरम् ।
कान्ताया सहितो रात्रौ
पुत्रार्थी विधिमुच्चरेत् ॥ ३ ॥

तारा देवीकी पूजा करके आगे कहे हुए औषधका पति-पत्नी दोनों पान करें और पुत्रार्थी होकर उक्त विधिका उच्चारण करें ।

समसौख्यं निरुन्मेष (षः?)
प्रयोगेषु यथा सुधीः ।
धैर्यवान्मोहनात्पूर्वं
तारापादाम्बुजं स्मरेत् ॥ ४ ॥

समान सौख्यके भागी स्त्री-पुरुष पहले निश्चल दृष्टियोंसे धैर्य पूर्वक सुरतके पूर्व तारा देवीके पद कमलका स्मरण करें ।

यदा सूर्येण मार्गेण
देहे वहति मारुतः ।
संचोद्य नाडिकां पुत्री
पश्चान्मोहनमाचरेत् ॥ ५ ॥

जब पिंगला नाड़ीमें अर्थात् दाहिनी नासिकामें श्वास चलती रहे तब पुत्री नामक नाड़ीको सञ्चालित करके मोहन अर्थात् सुरत आरम्भ करना चाहिये ।

करवीरकुसुमैर्देवी-
मार्यातारां वरप्रदाम् ।
त्रिसन्ध्यं पूजयित्वा तु
मन्त्रं सप्तशतं जपेत् ॥ ६ ॥

करवीर (हयमार) के फूलोंसे वरदा तारा देवीको त्रिकाल पूजा करके निम्नलिखित मन्त्रका सात सौ जप करे ।

मन्त्रस्त्वयं—ॐ जम्भे मोहय स्वाहा ।

पञ्चशिष्या (क्षा?) परो भूत्वा
मासमेकं तथाऽर्चयन् ।
वंशोद्योतकरं पुत्रं
लभते नात्र संशयः ॥ ७ ॥

आसन, मुद्रा, प्राणायाम, पूजा और जप इनमें तत्पर होकर एक मास अनुष्ठान करे तो वंशका मुख उज्ज्वल करनेवाले पुत्रको लाभ करे, इसमें सन्देह नहीं ।

उषित्वा लक्ष्मणामूलं
तन्मन्त्राधिष्ठितं पिवेत्।
सुरभ्या एक वर्णायाः
पयसा शबली कृतम्॥ ८॥

एक मास उपवास करे और लक्ष्मणा मूलको उक्त मन्त्रसे और अभिमन्त्रित या शक्तियुक्त करके एक वर्ण गौके दूधके साथ मिलाके पीवे।*

तदौषधि प्रभावेन
शुक्रवृद्धिः प्रजायते।
पिण्डाच्छुक्राधिकात्पुत्रः
कन्या रक्ताधिकाद्भवेत्॥ ९॥

उक्त लक्ष्मणा जड़ीके प्रभावसे वीर्य वृद्धि होती इसीसे पुत्र होता है और रक्तकी अधिकतासे कन्या होती है।

---

*टि० एक मास उपवासका यह तात्पर्य है कि दिन भर उपवास करके रातको अवश्य भोजन करता जाय। "पुष्योद्धृतं लक्ष्मणाया मूलं पिष्टं च कन्यया। श्रुत्बंते घृतदुग्धाभ्यां पीत्वाऽऽप्रोत्यबला सुतम्।" पुष्प नक्षत्रमें उखाड़ी गयी लक्ष्मण जडीको कुमारीके हाथसे पिसवा कर घी और दूधके साथ पीवे तो पुत्र हो।

तीर्थिको यदि पुत्रार्थी
भूदेवान्भोजयेत्तदा ।
दक्षिणां शक्तितो दत्वा
विदध्याद्वरयाचनम् ॥ १० ॥

ब्राह्मण यदि पुत्रार्थी हो वह भी ब्राह्मण भोजन करावे साथ ही दक्षिणा भी यथाशक्ति दे देवे । तब वर याचना करे ।

फल मूलाशनो भूत्वा
पार्वती परमेश्वरौ ।
त्रिसन्ध्यं पूजयित्वा तु
मन्त्रमेतज्जपेत्तदा ॥ ११ ॥

फल मूल आहार करके त्रिकाल पार्वती शंकरजीकी पूजा करे और निम्न लिखित मन्त्रका जप करे ।

ॐ नमो भगवते महेश्वराय नमः प्रजजाननाय, स्वाहा ।

परदाराभिगमनं
मद्यमांसादि भोजनम् ।

मिथ्याभिलपनं हास्यं
मानं क्रोधं च वर्जयेत् ॥ १२ ॥

परस्त्रीगमन, मद्य मांसका भोजन मिथ्या भाषण हंसी मान और क्रोधको त्यागना चाहिये विशेष करके व्रतके दिनोमें ।

तदा स्नात्वा सचैलस्तु
सुधौतवसनः कृती ।
मन्त्रमेतं जपेन्नित्यं
न निद्रां समुदाहरेत् ॥ १३ ॥

सुन्दर तथा स्वच्छ वस्त्र स्नान करके पहने तब उक्त मन्त्रको विधि पूर्वक जपे किन्तु निद्रित कभी न हो ।

हेमतारक ताम्राणि
एकीकृत्य सुसर्पिषा ।
दातव्यं लेहनं स्त्रीणां
क्षेत्र शुद्धिस्तथा भवेत् ॥ १४ ॥

सुवर्ण, चांदी, तांबेके भस्मको एकत्र करके गौके पवित्र घीमें मिलाके स्त्रीको खिलाना चाहिये । इससे क्षेत्र शुद्धि होती है ।

शेषन्तुपूर्व्ववत्कुर्व्वन्
कृतार्थो नियतं भवेत् ।
सत्पुत्रा लोकनात्यन्त
प्रीतिस्तिमित लोचनः ॥१५॥

शेष विधि पूर्ववत् करके अवश्य कृतार्थ हो सकता है। क्योंकि सत्पुत्रको देख कर सबका मन अत्यन्त हर्षित होता है। विशेषतः नयनानन्दकर होता है। स्मृतिमें भी कहा गया है कि :—"लोकं जयति पुत्रेण पौत्रेण नरकं जयेत्। अथ पुत्रस्य पौत्रेण परमानन्द मश्नुते।"

विविधविधिविधानं
देवता मन्त्र पूजा-
दयितयुवतिशिक्षा
सत्प्रतिग्राहकाणाम् ।
प्रथममुदितमस्मिन्
वीक्ष्य सिद्धैकवीरं
परमरतिरहस्यं
शांकरं काम तन्त्रम् ॥१६॥

यह कामतन्त्र परमश्रेष्ठ, अति गोपनीय और पार्वती शङ्करका संवाद रूप है। विविध विधियोंका विधान है। दो प्रकारका है अर्थात् पति-पत्नी दोनोंको शिक्षा है। इसलिये जो सहृदय इस कामशास्त्रोक्त विधिके अनुसार चलेंगे वे सिद्ध वीर होंगे।

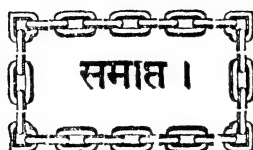
आसीद् ब्रह्मकुलेकलाग्रनिलयो
यो वासुदेवः कृती,
तस्य स्नेहवशाच्चिरं प्रति मुहुः
संप्रेरणात् साम्प्रतम्।
दीप्तेयं रतिशास्त्र दीपकलिका
पद्माश्रिया, धीमते
हृद्यार्थान्प्रकटीकरोतु जगतां
संहृत्य हार्दं तमः ॥ १७ ॥

कलाओंमें निपुण, जिस वासुदेवने पण्डित ब्राह्मण वंशमें जन्म लिया था उसीके बारम्बार प्रेरणा करनेसे स्नेह वश पद्मश्री पण्डितके द्वारा विरचित रतिशास्त्र रूपिणी यह दीपकलिक संसारका हार्दिक अन्धकार दूर करके हृद्य अर्थात् मनोहर अर्थोंको प्रकट करे।

राजा धर्मरतोऽस्तु निर्जित रिपुः
षड्वर्गवश्यो वशी
निःक्लेशाः कृतिनो भवन्तु
मुदिताः सत्कार लाभान्वितः ।
अन्योन्यप्रियताप्रसन्नमनसः
सर्वत्र सन्तु प्रजा,
नित्यं तिष्ठतु सर्व सत्व-
निचयैः सम्पूरिता मेदिनी ॥१८॥

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य इन छः शत्रुओंपर विजय पाकर राजा धर्ममें निरत हों, अथवा सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और आश्रय इन छहोंसे युक्त हों, विद्वान मान और लाभ प्राप्त कर सुखी हों, निःक्लेश हों, प्रजा सर्वथा सुखी हो और पृथिवी धनधान्य तथा सब प्राणियोंके साथ परिपूर्ण हो।

इति अष्टत्रिंश परिच्छेद ।



रतिवल्लभ

मूल्य १।।) सजिल्द २) डाक० ख०।)

उपयोगिता—रति-वल्लभको पढ़ अशांतिकी अग्निसे धका-धक जलनेवाले, नरक समान प्रतीत होनेवाले गृहस्थी जीवनको स्वर्गवत् शांति और सुखमय बनाइये। विवाह जीवनमें प्रवेश करनेवाले नवयुवकोंको इसे अवश्य पढ़ना और मनन करना चाहिये।

अश्लीलता या कामके नामसे चिढ़ने और नाक भौं सिकोड़ने वालोंको दूरबीनसे देखनेपर भी अश्लीलता न मिलेगी। अतएव निःसंकोच आप पढ़िये युवकों तथा युवतियोंको पढ़ाकर नित्य गुण्डों द्वारा कलङ्कित होनेसे बचाइये।

बेचिराग़-निःसन्तान घर सन्तानसे भरिये। प्राणप्यारीको सन्तुष्ट करके उनकी झिड़कियों और स्तम्भनवटीके खर्च और हानिसे बचकर जवानीका सच्चा आनन्द

फिर भी नापसन्द होनेसे पुस्तकका मूल्य-डाक व्यय सहित वापस देनेकी गारण्टी है।

पता—श्रीवेंकटेश्वर पुस्तक एजेन्सी, (बड़ाबजार) कलकत्ता